Chapter-5

पंचम अध्याय

मध्यकालीन मैथिली नाटक : नेपाल के मैथिली नाटक

पंचम अध्याय

मध्यकालीन मैथिली नाटक : नेपाल के मैथिली नाटक

मिथिला में जिस नाट्य परम्परा का बीजारोपण उमापति ने किया था उसका पल्लवन चिरकाल तक इस क्षेत्र में नहीं हो सका। इसका मुख्य कारण, मुसलमानों के अनवरत आक्रमण के फलस्वरूप उद्भूत होनेवाली आन्तरिक अशान्ति थी। ये मुसलमान आक्रमणकारी, नाट्यरूपों से अपरिचित रहने के कारण, उससे सहानुभूति पूर्ण व्यवहार रखने के लिये उद्यत नहीं थे। इन लोगोंने कट्टरवादिता के आधार पर एक ओर मंदिर, मूर्ति तथा ज्ञानार्जन संस्थाओं को भस्म करना आरंभ किया और दूसरी ओर अपने मज़हब के आदेशानुसार नृत्य, संगीत तथा वास्तुकला के संस्थानों को कुचलने में भी कोई कसर नहीं उठा रखी। मध्यकालीन मिथिला में उच्चश्रेणी के शास्त्रीय एवं लोक नृत्य-संगीत का बहुत ही प्रचार था, किन्तु इन आक्रमणकारियों की उपरि निर्दिष्ट विनाशकारी प्रवृत्तियों के कारण उसकी स्वर्णिम परम्परा विनष्ट हो गई तथा उसके विकास का मार्ग सदा के लिए अवरुद्ध हो गया।[१] फलत: इन सभी रूपों को वहीं शरण लेनी पड़ी, जहां इन आक्रमणकारियों के आतंक की छाया भी न पड़ सकती थी।[२] अत: मिथिला की नाट्य, संगीत एवं नृत्य परम्परा पड़ोसी राज्य नेपाल में जाकर पल्लवित और पुष्पित हुई। किन्तु कालान्तर में ऐतिहासिक परिस्थितियों की अनुकूलता के परिणाम स्वरूप उसका पुनरुत्थान हुआ और अनेक ऐसे नाटक लिखे गये जो कि हमारे मध्यकालीन मैथिली नाट्य-साहित्य की परिधि में आते हैं। अतएव अध्ययनगत सुविधा के विचार से प्रस्तुत अध्ययन को दो प्रधान भागों में विभक्तकर उपस्थित किया जा रहा है -----

---

१. द्रष्टव्य, बिहार थ्रु द एजेज - पृ. ४६८-६९

२. द्रष्टव्य, द संस्कृत ड्रामा, पृ. २४२-४३

२

१. नेपाल के मैथिली नाटक -- इनकी परम्परा मल्लराजाओं के शासन के अंत तक प्राप्त होती है ।

२. मिथिला के कीर्तनियां नाटक -- ये अधिकांशत: परवर्ती काल में लिखे गये ।

१. नेपाल के मैथिली नाटक

इस युग में नेपाल शासकों की छत्रच्छाया में पल्लवित मैथिली नाटकों के निर्माण एवं उनके विकास में युगगत परिस्थितियों एवं राजकीय प्रवृत्तियों का अत्यन्त महत्वपूर्ण हाथ रहा है, जिसे दृष्टिगत करने के लिए समकालीन ऐतिहासिक तथ्योंका संक्षिप्त विवरण यहां प्रस्तुत करना आवश्यक है ।

ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि :-------

मिथिला और नेपाल का संबंध अति प्राचीन काल से, राजा जनक के समय से, ही रहा है । उस समय की मिथिला की राजधानी नेपाल राज्य के अन्तर्गत जनकपुर नगरी ही थी । कहा जाता है कि वर्षों तक वायुमार्ग से नेपाल जाने के लिए केवल मिथिला होकर ही मार्ग था ।[१] यही कारण था कि जब मिथिला में विधर्मियों के कारण यहां की संस्कृति और सभ्यता विनष्ट हो रही थी और धर्म पतित हो रहा था, तो धर्म-संस्कृति के उपासक मैथिलोंने नेपाल में राज्याश्रय प्राप्त कर उनकी रक्षा की ।

सुलतान गयासुद्दीन तुगलकने, बंगाल पर विजय प्राप्त करने के बाद, ई.स.१३२४-२५ के आसपास हरिसिंह देव को पराजित कर तिरहुत को

---

१. ए हिस्ट्री ओफ मैथिली लिट्रेचर, भाग १, पृ.२५६

३

भी अपने अधिकार में कर लिया । तुगलकने सिमरांव के कर्णाट वंश का भी विच्छेदन कर दिया, क्योंकि उसके शासक हरिसिंहने उसके विरुद्ध बहादुर शाह की सहायता की थी ।[१] सुलतान गयासुद्दीन से पराभूत होकर हरिसिंह देव जंगलों में भटकते हुए नेपाल पहुंचे और भातगांव में अपने राज्य की स्थापना भी की । कुछ ऐतिहासिकों का कथन है कि हरिसिंह देव के संबंध में इस प्रकार की कोई घटना नहीं हुई, किन्तु मिथिला की पंजी-प्रथा और नेपाल की वंशावली-प्रथा इस घटना की सत्यता के लिए प्रमाणभूत हैं ।[२] हरिसिंह देव के राज्य की स्थापना के पश्चात् नेपाल के इतिहास में अनेक परिवर्तनों के साथ एक नया मोड़ उपस्थित होता है और इसी शासन से मैथिली भाषा एवं मैथिल विद्वानों का सम्पर्क भी घनिष्ठ होता जाता है । हरिसिंह देव के वंशजोंने लगभग अस्सी वर्षों तक राज्य किया । इस वंश के अंतिम उत्तराधिकारी श्यामसिंह देव के केवल एक लड़की ही थी, जिसका विवाह उन्होंने मल्ल राजा के एक उत्तराधिकारी जयभद्र मल्ल के साथ किया । ये राजा नान्यदेव के आक्रमण से भयभीत होकर तिरहुत भाग आये ।[३]

जयभद्र मल्ल के समय से नेपाल के शासन का बागडोर मल्लवंश के हाथ में आ जाता है । इस वंश के मल्ल की उपाधि के विषय में एक घटना प्रसिद्ध है । कहा जाता है कि क्षत्रियवंश के प्रथम राजा बामदेव के नवें उत्तराधिकारी अरिदेव जब किसी युद्ध में व्यापृत थे उसी समय इनके पुत्र का जन्म हुआ । इसी कारण उन्होंने अपने पुत्र को 'मल्ल' नाम से संबोधित किया और उसका नाम अभयमल्ल रखा ।[४] क्षत्रिय शासकों के

---

१. बिहार थ्रु द एजेज - पृ.३६०
२. ए हिस्ट्री ओफ मैथिली लिट्रेचर - वही पृ.२५६
३. हिस्ट्री ओफ नेपाल - पृ.१०८ (ऐतिहासिक तथ्यों का सम्पूर्ण आधार प्रस्तुत पुस्तक ही है)
४. वही - पृ.६६

पूर्व नेपाल में सनातन हिन्दू धर्म का प्रचार तो अवश्य था किन्तु प्रधानता बौद्धधर्म की ही थी । संभवत: इसी कारण यहां नाथ-सिद्ध सम्प्रदायों को बहुत अधिक महत्व प्राप्त हुआ । फलस्वरूप यहां अनेक तांत्रिक पद्धतियों का विकास अनायास ही होने लगा । क्षत्रिय राजाओंने भी इसी परम्परा का अनुसरण किया किन्तु साथ ही साथ उन्होंने हिन्दू देवालयों का निर्माण भी पर्याप्त परिमाण में करवाया । ठाकुरी राजाओंने ही सर्वप्रथम 'घोड़ा जात्रा' के रूप में यात्रा को प्रश्रय देकर उसका प्रचार और प्रसार किया । इस यात्रा की प्रारंभिक अवस्था में शक्ति की ही प्रधानता रही किन्तु शनै: शनै: कृष्ण, राम तथा अन्य देवों के प्रसंगों का भी समावेश होने लगा ।[१] नेपाल में प्राचीन काल से ही न्यूनाधिक रूप में पशुपतिनाथ का माहात्म्य रहा है किन्तु इस काल में सम्पूर्ण रूप से उनके ही महत्व को स्वीकार किया गया । इस समय के सभी ग्रंथों में शिव के विभिन्न रूपों की अर्चना-वन्दना की गयी है । हरिसिंह देव अपने साथ अपनी कुलदेवी 'भवानी' को लेते आये और उनके लिए भातगांव में एक भव्य विशाल मंदिर का भी निर्माण करवाया । दूसरी ओर यात्रा और कीर्तन के माध्यम से वैष्णव धर्म का भी प्रचार बढ़ ही रहा था । इन्हीं प्रभावों के कारण मल्ल शासन के अंतिम समय तक अन्य धार्मिक सम्प्रदायों को प्रश्रय प्राप्त होने पर भी शिव-शक्ति और कृष्ण की प्रधानता बनी रही ।[२]

मल्लवंश के सातवें उत्तराधिकारी जयस्थिति मल्लने तैंतालीस वर्ष तक राज्य किया । ये बड़े ही प्रतिभावान्, प्रभावशाली और नीतिकुशल थे । समय और समाज के अनुसार इन्होंने कई परम्पराओं का नया-

---

१. हिस्ट्री ओफ नेपाल - पृ.१०५ (ऐतिहासिक तथ्यों का सम्पूर्ण आधार प्रस्तुत पुस्तक ही है)

२. वही - पृ.१०६

५

परिवर्तितरूप उपस्थित किया और अनेक सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक नियमों का निर्माण भी किया । गृह, भूमि, जाति, दायभाग का अधिकार आदि सामाजिक नियमों को बनाने के लिये इन्होंने मिथिला के पांच विद्वानों -- कीर्तिनाथ उपाध्याय, रघुनाथ झा, श्री नाथ भट्ट, महिनाथ भट्ट तथा रमानाथ झा - को आमंत्रित किया । इनके शासन काल में नृत्य, संगीत कला को भी पर्याप्त प्रोत्साहन प्राप्त हुआ, इस कला के विकास पर सम्पूर्ण ध्यान दिया गया ।[१]

इनके पुत्र यज्ञ मल्ल या जयजक्ष मल्लने भी अत्यन्त तत्परता और नीति कुशलता से शासन-कार्य का वहन किया । इन्होंने अपने जीवनकाल में ही अपने राज्य को तीन समान भागों में विभक्तकर अपने तीनों पुत्रों को अलग अलग राज्य का भार सौंप दिया । ज्येष्ठ पुत्र राय मल्लने भातगांव का शासन संभाला, द्वितीय पुत्र रणमल्ल वणिकपुर या बनेपा तथा सात अन्य संबंधित गांवों के राजा हुए तथा कनिष्ठ पुत्र रत्नमल्लने काठमाण्डू में अपने शासन की स्थापना की । यह उल्लेखनीय है कि इसी समय के पश्चात् से इन राज्यों में विशेषकर भातगांव में, मिथिला की साहित्यिक एवं सांस्कृतिक परम्पराओं के विकास का सूत्रपात एक नवीन चेतना के साथ हुआ ।[२] मल्लवंश के उत्तराधिकारी विश्वमल्ल तथा त्रैलोक्यमल्ल के शासनकाल से ही विभिन्न भाषाओं में नाटकों की रचना प्रारंभ हो जाती है किन्तु आज उनकी प्रतियां खंडित रूप में ही उपलब्ध हैं । मैथिली नाटकों का सम्पूर्ण विकास भातगांव के चौदहवें उत्तराधिकारी जगज्ज्योतिर्मल्ल से प्रारंभ होता है । इस विकास-परम्परा की धारा अनेक आन्तरिक संघर्षों के होते रहने पर भी गोरखों के शासन की स्थापना

---

१. हिस्ट्री ओफ नेपाल, पृ.११०

२. ए हिस्ट्री ओफ मैथिली लिट्रेचर, भाग १, पृ.२५६

के पूर्वतक अविच्छिन्न रूप में प्रवाहित होती रही है । इनके पौत्र जगत् प्रकाश मल्ल स्वयं कलामर्मज्ञ, विज्ञानवेत्ता और कवि हृदय भी थे । इसी कारण अनेक विद्वानों, कवियों एवं कलाकारों को प्रोत्साहन प्राप्त हुआ और पर्याप्त मात्रा में संस्कृत एवं मैथिली नाटकों की रचना हुई ।[१] इनके पश्चात् जितामित्र मल्लदेव तथा भूपतीन्द्र मल्लदेवने भी चली आती हुई परम्परा के विकास में सक्रिय योगदान किया ।

भात गांव के अंतिम शासक रणजीत मल्ल की नीति कुशलता संकीर्णता के घेरे में सिमट गयी थी, साथ ही ये चरित्र हीन और कृपण भी थे । इन्होंने बड़े परिमाण में द्रव्य देकर बदले में ल्हासा से सोना और चांदी प्राप्त किया । कान्तिपुर के समान ही अपने राज्य में शिला-स्तंभ-निर्माण करने के लिए इन्होंने वहां के तत्कालीन राजा जयप्रकाश मल्ल से वास्तु कला में कुशल कुछ व्यक्तियों को भेजने की प्रार्थना की । जयप्रकाश मल्लने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर कुछ कुशल व्यक्तियों को भेजा तो अवश्य किन्तु इस आदेश के साथ कि वे उस शिला-स्तंभ को किसी न किसी रूप में नष्ट भी कर दें । आदेशानुसार उन लोगोंने कार्य सम्पन्न किया, परन्तु पश्चात् उन्हें राजकोप के कारण उसका पुनर्निर्माण उसी मूल्य पर करना पड़ा । भय के कारण उन व्यक्तियों ने जयप्रकाश मल्ल का भेद भी बता दिया । इस घटना से भातगांव, ललित पाटन तथा कांतिपुर के राजाओं के मध्य वैमनस्य उत्पन्न हो गया । परस्पर अविश्वास के कारण इन तीन शासकों के बीच राजनीतिक क्षेत्र में त्रिकोण की स्थापना हो गयी । इस राजनीतिक उथल-पुथल तथा पारस्परिक कलह से लाभ उठाकर गोरखा के राजा नरभूपाल साहने नेपाल पर आक्रमण किया किन्तु उसे नोवाकोट के वैश्य राजाओं से पराजित

---

१. हिस्ट्री ओफ नेपाल, पृ.११५

७

होकर लौटना पड़ा । इसके पुत्र पृथ्वीनारायण साहने रणजीत मल्ल से कपटपूर्ण मित्रता साध ली । रणजीत मल्ल के अनेक अवैधानिक पुत्र थे किन्तु औरसपुत्र एक ही थे, जिनका नाम वीर नरसिंह मल्ल था । पृथ्वी नारायण साहने उन अवैधानिक पुत्रों के साथ गठबंधनकर तांत्रिक विधि से वीर नरसिंह मल्ल को मरवा डाला,[१] जिसके पश्चात् से भातगांव की राज परंपरा विच्छिन्न हो जाती है ।

यक्षमल्ल के द्वितीय पुत्र, कांतिपुर के राजा रणमल्ल २१ वर्ष तक शांति और कुशलता से शासनकर, नि:संतान ही मर गये । इनके अनुज रत्नमल्लने बारह ठाकुरी राजाओं के मुख्य काजी की सहायता से उन्हें विष देकर मरवा डाला और कांतिपुर को अपने अधिकार में कर लिया । शासन की स्थापना के पश्चात् इन्होंने उस काजी की भी हत्या करवा दी । अपने अधिकार क्षेत्र के विस्तार के लिए ये सतत् नोआकोट तथा भोटिया राजाओं से संघर्ष रत रहा करते थे । इन लोगों को पराजित करने में तिरहुतिया ब्राह्मणों से इनको बहुत सहायता प्राप्त हुई जिसके प्रत्युपकार में उन्हें अनेक प्रकार का सम्मान मिला ।[२] इनकी मृत्यु के पश्चात् इनके पुत्र अमर मल्लने बड़ी कुशलता से शासन का भार संभाला । इनके शासनकाल में विभिन्न देवी-देवताओं के नृत्य का प्रारंभ हुआ जिनमें देवी कंकेश्वरी का नृत्य बहुत ही लोकप्रिय रहा । इनके समय से ही भातगांव के साथ विरोध का भाव उत्पन्न हो गया था जो धीरे-धीरे बढ़ता ही जा रहा था ।

राजा महीन्द्र मल्ल के ज्येष्ठ पुत्र सदाशिव मल्ल बड़े ही व्यभिचारी और उद्दंड स्वभाव के थे । वे सुन्दरी स्त्रियों का अपहरण

---

१. हिस्ट्री ओफ नेपाल, पृ.११९-२०

२. वही - पृ.१२२-

८

भी कर लिया करते थे, फलत: प्रजाने असंतुष्ट होकर ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर दी कि इन्हें भागकर भातगांव की शरण लेनी पड़ी । परन्तु चरित्रहीनता के कारण वहां भी इन्हें कैद में ही रखा गया । अराजकता के भय से इनके अनुज शिवसिंह मल्ल को राजा बनाया गया और इन्होंने बड़ी बुद्धिमत्ता से शासन का काम चलाया । इनके कनिष्ठ पुत्र हरिहरसिंह मल्ल स्वभाव के बड़े उग्र थे, इसलिए इन्हें ललित पाटन का राजा बनाकर वहां भेज दिया गया । ज्येष्ठ पुत्र लक्ष्मीनरसिंह मल्ल कांतिपुर की गद्दी पर बैठे । इनके पुत्र प्रतापमल्लने इन्हें कैद कर लिया और स्वयं १६३९ ई. में राजगद्दी पर बैठे । ये बड़े ही प्रतिभावान् और नीतिकुशल शासक सिद्ध हुए । इनकी दो रानियां मिथिला की ही थीं । इनके दरबार में विभिन्न देशों के विद्वानों को प्रश्रय मिला था और उनसे इन्होंने अनेक शास्त्रों की शिक्षा भी ग्रहण की । मैथिल ब्राह्मण नरसिंह ठाकुर से इन्होंने सविधि दीक्षा ग्रहण की और उन्हें गुरु-आचार्य के पद से विभूषित किया । बड़ी दक्षता से ये १६८९ ई. तक शासन करते रहे ।[१]

प्रतापमल्ल के पौत्र भास्कर मल्ल बड़े ही विलासी, स्त्रैण और भीरू स्वभाव के थे । इनके दो रानियां तथा दो रखैल थीं । दो वर्ष के लगातार महाभारी के कारण इनकी मृत्यु हो गयी और उसीके साथ कांतिपुर में सूर्यवंश की राज्य परम्परा भी विनष्ट हो गयी । इसका कारण यह था कि इन्हें एक भी औरस पुत्र नहीं था । अराजकता के भय के कारण रानियोंने विचार विमर्श के पश्चात् पुत्री की ओर के किसी दूर के संबंधी जगज्जय मल्ल को राजा बनाया । राजा होने के पूर्व इनके दो पुत्र थे तथा उसके पश्चात् तीन पुत्र और हुए । जगज्जय मल्लने

---

१. हिस्ट्री ओफ नेपाल पृ.१२८-२९

अपने द्वितीय पुत्र जयप्रकाश को राज्य तिलक देने की इच्छा प्रकट की। इसका विरोध करते हुए प्रधान काजीने तृतीय पुत्र राज्यप्रकाश का नाम प्रस्तावित किया। इस मतभेद के कारण ये लोग परस्पर षड्यंत्र करके एक दूसरे को नीचा दिखाने के प्रयत्न करने लगे। किन्तु अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् जयप्रकाश मल्ल ही १७३२ ई. में गद्दी पर बैठे।[१] इनके कुशासन से असंतुष्ट कर्मचारियोंने क्रांति की, जिसका कि शमन उसी रूप में किया गया। अपनी छिन्न-भिन्न शक्तियों के संचय के बाद कर्मचारियोंने रानी दयावती को अपने पक्ष में मिला लिया और उनके पुत्र को, जिसकी अवस्था केवल १८ महीने की ही थी, राजगद्दी पर बैठाया तथा जयप्रकाश मल्ल के लिए इसप्रकार की भयंकर परिस्थितियां उत्पन्न कर दीं कि विवश होकर उन्हें भाग जाना पड़ा। गुह्येश्वरी में छिपकर इन्होंने शक्ति का संचय किया और उनलोगों को पराजित करने के पश्चात् कांतिपुर की राजगद्दी पर पुन: अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। शासन को सुदृढ़ बना लेने पर इन्होंने नोआकोट के पृथ्वीनारायण शाह को वहां से खदेड़ दिया, किन्तु निर्दोष प्रधानकाजी कासीराम को मरवाकर एक बड़ी भूल भी की जो इनके पतन का कारण सिद्ध हुई।

इस विषम स्थिति से लाभ उठाकर पृथ्वीनारायण साहने नोआकोट के बत्तीस तिरहुतिया ब्राह्मणों की जमीन-जायदाद को अपने अधीनकर उन्हें नेपाल भाग जाने को विवश कर दिया।[२] ललितपुर के प्रधानोंने षड्यंत्र करके जयप्रकाश मल्ल को पदच्युत करने का प्रयत्न किया, जिसमें काजी गंगाधर झाने राजा को बचाने का प्रयत्न अवश्य किया। इसी बीच पृथ्वी नारायण साहने पुन: कांतिपुर पर आक्रमण कर दिया,

---

१. हिस्ट्री ओफ नेपाल, पृ.१३५
२. वही, पृ.१३६

किन्तु उसे हारकर ही नोआकोट वापस लौट जाना पड़ा । इस युद्ध में दोनों पक्षों की अधिक क्षति हुई । इसकी पूर्ति में शाह को अठारह वर्ष लग गये । आक्रमण के श्रम को महाराज मिटा भी नहीं पाए थे कि चेचक से उनके पुत्र की मृत्यु हो जाती है । इस समाचार से भातगांव के राजा रणजीत मल्ल को बड़ी प्रसन्नता हुई, क्योंकि अब नि:सन्तान होने के कारण उस वंश की राज्य परम्परा विनष्ट हो रही थी । एक ओर तो पुत्र शोक से जयप्रकाश का हृदय व्याकुल था, दूसरी ओर देश में भूकम्प के कारण बहुत बड़ी क्षति हुई । इन विषम परिस्थितियों से लाभ उठाकर साहसी पृथ्वी नारायण शाहने १७६८ ई. में कांतिपुर पर आक्रमण कर दिया । उस समय वहां इन्द्र-रथ-यात्रोत्सव मनाया जा रहा था । प्रथा के अनुसार सभी सैनिक मदिरा के नशे में मस्त थे । अत: अनायास ही शाहने कांतिपुर की राजगद्दी पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया ।[१] राजा जयप्रकाश को प्राण-रक्षा के लिए भातगांव में शरण लेनी पड़ी । यह उल्लेखनीय है कि इनके राज्यकाल में विभिन्न मंदिरों में संगीतात्मक एवं गीति-नाट्यों का अभिनय हुआ करता था । युद्ध में व्यापृत होने पर भी इन्होंने नृत्य संगीत के विकास की ओर ध्यान दिया ।

ललितपुर के राजा हरिहरसिंह मल्ल के उत्तराधिकारी सिद्धिनरसिंह मल्ल बड़े ही बुद्धिमान एवं धार्मिक राजा थे । राधा-कृष्ण के उपासक होने के कारण इन्होंने अपने दरबार के सामने एक विशाल मंदिर बनवाकर उसमें युगल-मूर्ति की स्थापना की । कालान्तर में अपनी पत्नी की

---

१. हिस्ट्री ओफ नेपाल, पृ.१३८

२. वही, पृ.१५१

११

मृत्यु से इनका हृदय वैराग्य से भर जाता है और १६५२ ई. में अपने प्रधानों पर राज्य-भार सौंपकर ये तीर्थ यात्रा पर निकल जाते हैं। इनके उत्तराधिकारी श्रीनिवास मल्लने तत्कालीन भातगांव के राजा की सहायता से कांतिपुर को अपने अधिकार में कर लिया। इनके पुत्र योगनरेन्द्र मल्ल बड़े ही जन-प्रिय राजा हुए। इनकी सदाशयता के कारण भातगांव के राजा इनसे अकारण द्वेष करने लगे और तांत्रिक प्रयोग के द्वारा उनके पुत्रको भी मरवा डाला। इस घटना से उनके मन में विरक्ति का भाव आ गया और वे जंगल में चले गये। मंत्रियोंने विचार के पश्चात् कांतिपुर के राजा महीन्द्र मल्ल को ही यहां का भी कार्यभार सौंप दिया।[१] ये नि:संतान ही मर गये, अत: भातगांव के राजा रणजीत मल्ल को ही ललितपुर का राज्य-भार संभालना पड़ा। किन्तु एक वर्ष के अनन्तर ही कुचक्रों के कारण उन्हें इसका त्याग भी करना पड़ा।

उन्हीं प्रधानोंने पुन: कांतिपुर के राजा जयप्रकाश को आमंत्रित किया। इनके सुशासन के बावजूद भी षड्यंत्रों के कारण इन्हें भी उसका त्याग करने को विवश होना पड़ा। इनके पश्चात् विश्वमल्ल के दौहित्र विश्वजीत मल्लने चार वर्ष तक यहां का शासन किया। किन्तु प्रधानोंने चरित्रहीनता का दोष लगाकर उन्हें मरवा डाला और पृथ्वी नारायण शाह की आज्ञा से नोआकोट के दलमर्दन साहको अपना शासक बनाया। गोरखाली होने के कारण दलमर्दन साह अपनी इच्छानुसार कार्य किया करता था जिससे असंतुष्ट होकर उन प्रधानोंने उसे हटाकर विश्वजीत के वंशज तेजनरसिंह मल्ल को राजगद्दी पर बैठाया। इन्हीं के

---

१. हिस्ट्री ऑफ नेपाल, पृ.१५१

शासनकाल में पृथ्वी नारायण साह नेपाल आया, जिसके आतंक से ये भात गांव को भाग गये ।[१] पृथ्वी नारायण साहने पुन: आक्रमण किया, जिसमें घोर युद्ध के पश्चात् उसे विजय भी प्राप्त हुई और इस प्रकार वह भातगांव, कांतिपुर और ललितपुर, तीनों ही राज्यों का शासक हो गया । अत: अब नेपाल में गोरखों का शासन पूर्ण रूप से स्थापित हो जाता है, जिसके साथ ही मल्लवंश की राज्य परम्परा भी नष्ट हो जाती है ।[२]

निष्कर्ष :--------- उपर्युक्त परिस्थितियों की पर्यालोचना से यह स्पष्ट हो जाता है कि मिथिला और नेपाल का संबंध किस प्रकार का था । मल्लराजाओं के दरबारों में मैथिल विद्वानों की ही प्रधानता रही, अत: मैथिली दरबारी-भाषा के रूप में स्वीकृत हो गयी । कुछ मैथिल ललनाएं भी राजमहिषी के पद पर आसीन थीं, फलत: इस भाषा को अधिक प्रोत्साहन मिला । मैथिली भाषा के अपनाये जाने में एक अन्यकारण यह भी था कि दरबार के विलासी वातावरण के उपयुक्त शृंगार रस से सिक्त विद्यापति तथा अन्य कवियों की कोमल-कान्त पदावली का प्रचार और प्रभाव बढ़ रहा था, साथ ही मिथिला के शास्त्रीय संगीत एवं मधुर लोक संगीत तथा नृत्य के प्रति भी लोगों का आकर्षण था ।[३] अत: इन अनुकूल वातावरण में मैथिली भाषा का भी विकास हुआ और उसमें नाटकों की भी रचना होने लगी ।

---

१. बिहार थ्रु द एजेज, पृ.५९६

२. हिस्ट्री ओफ नेपाल, पृ.१५५-५६

३. हिस्ट्री ओफ मैथिली लिट्रेचर भाग १ पृ.२५७

पूर्ववर्ती विवेचन से प्रकट है कि मिथिला निवासी विभिन्न राजाओं के शासनकाल में समय समय पर गीत, नृत्य, यात्रा आदि लोक-नाट्यों के आयोजन किया करते थे । अतएव उक्त तथ्यों के प्रकाश में यह असंदिग्ध रूप से कहा जा सकता है कि वे समकालीन मैथिली नाटकों की रचना की आधारभूत पृष्ठभूमि का निर्माण करते हैं ।

तीसरी उल्लेखनीय बात यह है कि यहां के नाट्य-साहित्य पर मिथिला के जननाट्य, संगीत एवं नृत्यका गहरा प्रभाव लक्षित होता है । प्राचीन काल से ही मिथिला न केवल सांस्कृतिक एवं सामाजिक क्षेत्रों में अपितु संगीत-नृत्य के क्षेत्र में भी अग्रणी रही है । यहां की इस परम्परा का सुव्यवस्थित इतिहास नान्यदेव के समय से प्राप्त होता है । कर्णाटवंश के अंतिम राजा हरिसिंह देव के दरबार के ज्योतिरीश्वर स्वयं धुरन्धर संगीतज्ञ थे । इन्होंने 'वर्ण-रत्नाकर' में विभिन्न प्रकार के नृत्य, संगीत, अभिनय आदि का विस्तार के साथ वर्णन किया है । नेपाल के सिंह भूपाल को १५ वीं शदी के मिथिला के शासक के रूप में स्वीकार किया गया है । ये अच्छे संगीतज्ञ थे और इस विषय पर उनके कुछ ग्रंथ भी प्राप्त हैं । संगीताचार्य जगध्धर इनके समसामयिक ही थे । इनकी ख्याति नेपाल में बहुत हुई । इन्होंने वहां की नृत्य-संगीत परंपरा को अनेक प्रकार से विकसित किया ।[१] उमापतिने जिस कीर्तनियां शैली का प्रचार किया, उसका प्रभाव नेपाल में अनेक क्षेत्रों में दृष्टिगोचर होता है । इन्होंने कृष्ण की विभिन्न लीलाओं का अनुकीर्तन कर मनोरंजन के माध्यम से जन साधारण में भक्ति का प्रचार-प्रसार करना प्रारंभ किया था । ये

---

१. बिहार थ्रू द एजेज, पृ. ४६७-६८

लीलाएं नेपाल के दरबार के वातावरण के अनुकूल सिद्ध हुईं । अत: इस शैली को वहां पर आदर के साथ विकसित होने का अवसर मिला । कुछ समय पश्चात् बंगाल की यात्रा शैली की लोकप्रियता ने भी वहां के नाट्यकारों को आकर्षित किया और वे इससे प्रभावित होकर इस शैली पर रचना भी प्रस्तुत करने लगे ।

उपरि निर्दिष्ट कारणों से नेपाल के नाट्य साहित्य की पृष्ठ भूमि में तीन तत्त्व इसे प्रभावित कर रहे हैं -- एक तो संस्कृत की नाट्यशैली, दूसरे मिथिला की संगीत-नाट्य परम्परा और तीसरे बंगाल की यात्रा शैली । अतएव यहां के नाटकों में इन तीनोंका अद्भुत एवं सरस त्रिवेणी संगम हुआ है । यही कारण है कि यहां के नाटकों की आलोचना किसी भी एक शैली विशेष पर नहीं की जा सकती । वे जिस रूप में हैं उसी रूप में स्वीकार कर उनका अनुशीलन किया जाना चाहिए ।

यहां के नाटकों की एक अन्य विशेषता यह भी है कि कथोपकथन में भी गद्य का ही प्रयोग हुआ है, जब कि मिथिलांचल में लिखे गये नाटकों में जीवन झा के पूर्व तक संस्कृत-प्राकृत का प्रयोग पाया जाता है ।

नाटकों का स्वरूप :-----

१. कथावस्तु ------- इन नाटकों की कथावस्तु के स्रोत के रूप में विभिन्न पुराणों एवं ऐतिहासिक कथानकों को ही आधार-बनाया गया । पुराणों के उन्हीं कथांशों पर नाटकों की रचना हुई, जिनमें अन्य तत्त्वों के अतिरिक्त शृंगार रस का भी समावेश सरलता से किया जा सकता था । किसी भी नवीन या मौलिक विषयों की उद्भावना

१५

इस काल में नहीं हुई । इन पौराणिक कथाओं के प्रस्तुतीकरण में भी लेखकों की मौलिकता लक्षित नहीं होती है । इन सुपरिचित कथाओं को अपनाये जाने का कारण यह हो सकता है कि कृष्ण की विभिन्न लीलाओं में भौतिक शृंगार का समावेशकर जन-भावना को आध्यात्मिकता की ओर उन्मुख करने का ध्येय इन नाटककारों का रहा होगा । जब जन साधारण का हृदय परिष्कृत हो जाता था तो ईश्वर के दार्शनिक रूपों की चर्चा से उनके हृदय में उस सर्वात्मा की मूर्ति को अंकित कर दिया जाता और तत्पश्चात् इस भौतिक संसार की सम्पदाओं की क्षणभंगुरता का निर्देश करते हुए काम, क्रोध, लोभ, मोहादि के पाश से मुक्त होकर जीवन के अंतिम पुरूषार्थ को प्राप्त करने का उपदेश दिया जाता था । उपर्युक्त तथ्य यहां के प्रत्येक नाटक में आए हुए उल्लेखों से प्रमाणित है ।[१] पौराणिक कथानक अपनाने का एक अन्य

---

१. (क) शंका ---- हे नारद ऋषे ! एक: पुरारि: आद्य पुरूष एव विश्वात्मको भवति स पुरारि: । सृष्टि-स्थिति- संहृतिकलाभि: क्रियाभि: अनन्तरूप: नाना रूपो भवति । यथा एकस्य पुरूषस्य नाना क्रियाभि: नानात्वं भवति, एक एवावतिष्ठते । एवं चेत् तर्हि पृथग् जनगणै: आहित: समाहितो यो वादजल्प:, तै: सुकृतिनोपि -- पंडितापि अस्यपुरभिद: शंभो: पृथग् विधत्वे नानात्वे कथं संशेरते ।

समाधान ----- हे पार्वत ! श्रुणु, ज्ञान सुखात्मकस्य ईश्वरस्य सृष्ट्यादि कार्यं शरीर व्यतिरेकेण न संभति । अत: कारणात् पृथिव्यादि भूतानि सृष्ट्वा चैतन्य स्वरूपेण तत्र प्रतिविंवते । तेन शरीर भेदेन भेद: न तु वास्तवत:, आत्मकृतो न भेद: । तस्यात्म: तस्य आकीट ब्रह्म पर्यन्तं एकत्वात् ।

(जगत् प्रकाश मल्ल कृत मलय गंधिनी पृ. ४६-४८)

(ख) हे मन ए विधि आरति लाय, काम क्रोध लोभ मोह महारिपु जे विधि दूरहि पाराय । - - - माया पास पसार देखि कहु दिने दिने उपजु तराय ।

(उक्त लेखक कृत कुंज विहारी नाटक का अंत)

कारण यह भी हो सकता है कि अशिक्षा एवं कट्टरवादिता जन्य पूर्वाग्रह के कारण तत्कालीन जनता किसी नवीन विषय को हृदयंगम करने के लिये उद्यत नहीं थी ।

पौराणिक आख्यानों के अपनाये जाने के कारण यहां के नाटकों में प्रासंगिक कथाओं का अभाव है, प्रारंभ से अन्त तक आधिकारिक कथा ही चलती रहती है । कुछ नाटकों में रूपक के भेदों के लक्षणों का निर्वाह आंशिक रूप में पाया जाता है और कुछ में उपरूपक के भेदों के सामान्य नियमों का पालन हुआ है । किन्तु जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है कि इन नाटकों में त्रिविध नाट्य शैलियों का अपूर्व समन्वय वर्तमान है, अत: इनकी नाट्य शास्त्रीय समीक्षा नहीं की जा सकती । ये सम्पूर्णत: जन नाटक हैं । घुणाक्षर न्याय से यदि कुछ लक्षणों का निर्वाह हो भी गया है तो भी उन्हें प्रतिनिधि नहीं माना जा सकता, सागर की दो चार लहरें सम्पूर्ण सागर का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकतीं । अतएव इन नाटकों की सफलता का आधार यही हो सकता है कि जिन भावों को लेकर इनकी रचना हुई है, उन भावों को उद्बुद्ध करने में वे किस सीमा तक सफल हुए हैं । इस दृष्टि से देखने पर यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि दरबार के विलासी वातावरण में शृंगार की भौतिक परिसीमा तक पहुंचकर भी यहां के नाट्य साहित्य जन-मानस में भक्तिरस के उद्रेक द्वारा आध्यात्मिकता का विकास किया है, जैसा कि निम्नलिखित विवेचन से प्रकट है ।

प्रत्येक नाटक का प्रारंभ शिव की स्तुति से होती है, प्राय: शिव की स्तुति संस्कृत में मंगला चरण के रूप में पायी जाती है ; जिसके पश्चात् मैथिली गीत के द्वारा शक्ति की वन्दना की जाती है ।

यह स्पष्टत: मिथिला के व्यवहार का प्रत्यक्ष प्रभाव है, क्योंकि मिथिला में किसी भी शुभ प्रसंग पर कुलदेवता के गीत, जिसे यहां की भाषा में 'गोसाउनिक गीत' कहा जाता है, प्रारंभ में गाये जाते हैं । इस प्रकार इन स्तुतियों में संस्कृत एवं मैथिली दोनों ही भाषाएं प्रयुक्त हुई हैं । संस्कृत नाट्य शैली की भांति ही अनेक नाटकों में नान्दी के अंत में सूत्रधार 'अलमति विस्तरेण' कहता हुआ रंगमंच पर आता है और नटी को बुलाकर नाटक तथा नाट्यकार का संक्षिप्त परिचय एवं अवसर विशेष पर उक्त नाटक के अभिनय के लिये राजाज्ञा का निर्देश करता है । वह स्वयं 'राज वर्णना' करता है और नटी 'देशवर्णना' [१] प्रस्तुत करती है । अनन्तर वे दोनों नाट्याभिनय के साज सजने के लिये प्रस्थान करते हैं । इसके पश्चात् पात्रों का प्रवेश होता है । रंगमंच पर उपस्थित होकर प्रत्येक पात्र संस्कृत के एक श्लोक द्वारा अपना परिचय प्रस्तुत करता है ।[२] कुछ

---

१. राज वर्णना में राजा की शूरता, धीरता, उदारता, सुन्दरता, कुलीनता आदि गुणों का वर्णन किया जाता है, तथा देश वर्णना में राजधानी के महत्व एवं उसके विविध सौंदर्य का वर्णन प्रस्तुत किया जाता है ।

२. महादेव ----- हे पार्वती, नंदी, भृंगी प्रथम हमर वचन सुनू ।
सर्वे -------- त्रैलोक्यनाथ ! आज्ञा करू ।
महादेव ----- सदनं नटवृंदवंदितं प्रियया शैलजया समेत: ।
विविशे रजनीशशेखर: सह नंदि प्रमुखैर्गणै वृत: ।।
हे लोके एतादृश महादेव हमे ।
सर्वे -------- देव, सत्य ।
पार्वती ----- हे त्रैलोक्यनाथ, हम किछु विनती करब, से सुनल हो अओ ।
महादेव ----- पार्वती, कहू ।
पार्वती ------गिरीन्द्र कन्यावत् शंकरेण सार्कं निशानायक शेखरेण ।
विशामि रंगं नटवृंदं वंदयं मनोरथं पुरयती निजानाम् ।।
हे प्राणेश, एतादृशी पार्वती नामे हमे ।
(जगत् प्रकाश मल्ल कृत उषाहरण नाटक)

नाटकों में उपर्युक्त क्रम में तीन बातों की भिन्नता पायी जाती हैं ----
(१) प्रथमत: उनमें सूत्रधार 'अलमति विस्तरेण' शब्दका प्रयोग नहीं करता है, सीधे रंगमंच पर उपस्थित होकर नटी को बुलाता है, और पश्चात् का क्रम उसीप्रकार चलता है ; (२) द्वितीयत: नटी रंगमंच पर नहीं आती, सूत्रधार स्वयं 'राजवर्णना' और 'देशवर्णना' प्रस्तुत करता है, दो एक नाटकों में इस हेतु आकाश भाषित का प्रयोग किया गया है ; (३) तीसरा अंतर यह है कि जिन नाटकों में सूत्रधार के प्रस्थान के तुरंत बाद ही देवताओं का प्रवेश होता है, उनमें एक प्रवेश गीत, जो प्रार्थना का ही एकरूप होता है, के माध्यम से उनके रूप वेष-भूषा तथा मनोदशा का वर्णन और उनके साथ प्रवेश करनेवाले अन्य पात्रों का नामोल्लेख कर दिया जाता है ।

इन तथ्यों से ऐसा विदित होता है कि इन नाटकों का सूत्रधार संस्कृत नाटक का ही सूत्रधार प्रतीत होता है, जन नाटकों का व्यास, तटस्थ या भागवत नहीं । कथा-प्रसंगों के तारतम्य का निर्वाह सूत्रधार नहीं, किन्तु विभिन्न वाक्यकार करते रहते हैं । सूत्रधार तो नटी के साथ मुख्याभिनय की साज सज्जा के लिये तथा पुन: रंगमंच पर नायक - नायिका के अभिनयार्थ प्रस्थान करता है ।[१] अतएव वह स्वयं तारतम्य का निर्वाह नहीं करता ।

प्राय: सभी नाटकों में अन्य पात्रों का प्रधान-क्रम संस्कृत नाट्य शैली की भांति ही है । उनमें रंगनिर्देश का अभाव है, किन्तु कथोपकथन के समय विभिन्न पात्रों की भाव भंगिमा मुद्रा और मन: स्थिति का

---

१. सूत्रधार ----- हे प्राणवल्लभे, हमे नलराजाक नेपथ्य करब ।
इहाओ दमयन्तीक नेपथ्य करू गए ।
नटी ----- नाथ अवश्य ।
(जगत् प्रकाश मल्ल कृत नलीय नाटक)

निर्देश बड़ी सतर्कता से किया गया है । विस्मृत बातों को स्मरण पथ में लाने के लिये नाक पर हाथ रखकर सोचना, व्रीड़ा का नाट्य, स्नानोत्तर साड़ी के पल्ले को हाथ से उठाने की क्रिया आदि विभिन्न भंगिमाओं को प्रदर्शित करने का निर्देश यहां के नाटक साहित्य में बड़ी सूक्ष्मता से किया गया है ।

कीर्तनियां अथवा यात्रा शैली के कारण यहां के नाटकों में गीतों की बहुलता है । कुछ तो गीति एवं संगीत नाटक ही है तथा अनेक नाटकों में यत्र तत्र कथोपकथन के रूप में गीतों का ही प्रयोग हुआ है । अनावश्यक गीतों के समावेश से कथाप्रवाह अवरुद्ध हो जाता है, इसलिये आधुनिक युग के नाटकों में यथार्थता के नाम पर इस तथ्य की उपेक्षा की गयी है । परन्तु इतना तो स्पष्ट ही है कि गीत के द्वारा मानव-हृदय के भावोद्गार सरलता और स्वाभाविकता से अभिव्यक्त होकर अधिक प्रभावशाली सिद्ध होते हैं और उसमें सन्निहित स्वर-लहरी के कारण जन-मानस तत्क्षण ही न केवल आनन्द का अनुभव करता है, अपितु उससे प्रभावित भी होता है । यहां के नाट्य साहित्य में प्रयुक्त गीतों से कथाप्रवाह में तीव्रता तो आती ही है, साथ ही तत्कालीन वातावरण की भी विवृत्ति होती है । अतएव ये गीत अत्यन्त स्वाभाविक और उपयुक्त हैं ।

कथोपकथन में छोटे छोटे वाक्यों का प्रयोग हुआ है जो सरल, चुस्त और बोलचाल की भाषा में हैं । इनकी सब से महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इन में कथा और भाव का समुचित निर्वाह,

उत्सुकता की वृद्धि, नाटकीय लाघव एवं प्रत्युत्पन्नमतित्व आदि का सुन्दर रीति से समावेश हुआ है ।[१] कथोपकथन में व्यंजना शक्ति का अभाव अवश्य खटकता है किन्तु उसकी पूर्ति प्रसंगानुकूल भाषा के प्रसाद, ओज और माधुर्य गुणों का सम्यक् व्यवहार तथा उसकी सहज प्रवाहमयता से हो जाती है ।

२. भाषा ------- नेपाली-मैथिली नाटकों में प्रधान रूप से संस्कृत और मैथिली भाषा का प्रयोग हुआ है । मैथिली के तत्कालीन एवं आधुनिकतम, दोनों ही रूप नाटकों में प्रयुक्त हुए हैं । कुछ नाटकों में यत्र तत्र प्राकृत भी व्यवहृत हुई है और कुछ नाटकों की भाषा प्रारंभ से अंत तक ब्रज बुली है, जिनमें स्थान स्थान पर खड़ी बोली के

---

१. (क) कामकन्दला ---- एहाजो हमरा सजो प्रेम करू ।
माधवानल ----- हे कामकन्दला, स्नेह करब नहि । जजो करिअ तजो रक्त कम्बल समान स्नेह करय चाहिय ।
काम. -------- हे माधव, सत्पुरूष सजो स्नेह जन्मान्तपर्यंत रहत, एहि संदेह नहि ।
माध. ------- हे कामकन्दला, तजो ई व्यवस्था मेल । हमर वचन सुनू ।
काम. ------ हे प्राणाधिक प्रियतम, आज्ञा करू ।
(माधवानल, पृ.२७)

(ख) कृष्ण ----- इह उद्दाम ग्वाल न होयगो । याहि मारिबे को एक उपाय करिहौं । कहिनी बुझावन खेलन खेले आपुहि मरैगो ।
बलभद्र ----- भाई भले, जो हारे अपन जोरि पीठ चढ़ाय भांडीरवट ताजो ले जाय । आदि (कालिय मथन, पृ.२०)

(ग) जयन्त ----- काका, काहे को करो गुमान । हे प्रद्युम्न बड़ो साहस कियो हय । मानुष होय अमरावती आए हो । पानी कहुं ऊंच नहि चलत हय, नीच को धरत हय । आदि ।
(पारिजात हरण पृ.३५)

शुद्धतम रूप भी प्रयुक्त हैं ।[१] कालिय मथन, पारिजात हरण, प्रभावती हरण आदि नाटकों की भाषा सम्पूर्णत: ब्रजबुली ही है ।[२] एक दो नाटकों की रचना जयदेव की संस्कृत शैली पर हुई है जिनमें रंगनिर्देश और अंग विकारादि का उल्लेख नेवारी भाषा में हुआ है । 'जैमिनीय भरत नाटक' से इस तथ्य की पुष्टि होती है । प्रस्तुत नाटक में आदि से अन्त तक अंग विकारादि के लिये नेवारी और शेष में संस्कृत के अतिरिक्त अन्य भाषा के एक वाक्य का प्रयोग भ्रमवश भी नहीं हुआ है ।[३]

---

१. हे जगदीश्वर, पानी, कुशासन लीजिए । मुनीश्वर बैठिए । मुनिराज तुम्हारी बड़ाई । आदि (जगत् प्रकाश मल्ल कृत पारिजात हरण पृ.१२-१३)

२. (क) नंद --- हे बलभद्र, अब जीयते कौन काम । कालीदह में धसि के जीउ देत हौं ।

बलभद्र--- हे, बाबा नंद, माई जसोदा, दह में मति धसिये । माई आवयगो नेकु धीरज राखि रहो । मेरो वचन ते आपनो देह सम्हारयगो । (कालियमथन पृ.१५)

(ख) हे त्रिलोकनाथ, याहि वर मांगत हौं । हम सों प्रीति सदा राखो । मोको सालोक्य मुक्ति दीजिए, कदाचित् जन्म देहु, अजामिज ब्राह्मण जन्म दीजिए । (पारिजात हरण पृ.४२) आदि ----- ।

३. (क) सुनय विनय युतं विदित धरेशं । रविकुल मंडन मदन सुवेशं ।।
नरपति पूजित जित रिपु वीरं । रसिक जिता मित्र सुमति सुधीरं ।।
वितरण कर्म्मरतं याचके नियतं । कुरुते गणेशो नृपवर्णनं सततं ।।

(ख) राजते भक्तनगरं सदन निचितं । वासव नगर समं विवुध कलितं ।।
रूचिर वातायन हाटक रचितं । वरण रजतमय मणि खचितं ।।
शोभते राज भवनं विपुल सुचिरं । कवि गणेशस्तनुते वर्णनं रूचिरं ।।

प्रस्तुत नाटक के विभिन्न श्लोकों में कवि गणेश का नामोल्लेख है, जिसके आधार पर यह अनुमान किया जा सकता है कि सुमतिजिता-मित्र मल्ल के आश्रय में उक्त नाम के लेखक रहे होंगे जिन्होंने आश्रयदाता के नाम से विभिन्न ग्रंथों की रचना की होगी ।

यहां के सम्पूर्ण मैथिली नाट्य साहित्य में पात्रों के प्रवेश और प्रस्थान की सूचना, मुद्राओं का अंकन, रंग निर्देश और भावभंगिमा का उल्लेख नेवारी भाषा में ही किया गया है ।[१] इससे स्पष्ट है कि यहां के नाटकों में तत्कालीन लोकप्रिय और प्रचलित विभिन्न भाषाओं का प्रयोग प्राय: हुआ करता था किन्तु प्रधानता मैथिली की ही रहती थी । इन नाटकों की मैथिली भाषा अत्यन्त प्रांजल, सुगठित और भाव-भार-वाहिनी है । सत्रहवीं और अठारहवीं शतियों में इसके इस निखरे हुए रूप को देखकर इसकी विकासावस्था, मधुरिमा और महत्व का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है । नाटकों के सम्वादों में गद्य का ही प्रयोग हुआ है । इसलिये यह भाषा अपनी प्रारंभिक अवस्था से ही गद्य-पद्य दोनों के भावों को स्वाभाविक, सरल और सरस रीति से वहन करने में सक्षम रही है । इन नाटकों की रचना दरबार के साथ ही जन सामान्य के लिये भी हुई थी, अत: इनमें अधिकांशत: बोल-चाल की भाषा ही व्यवहृत हुई है । रस और प्रसंग

---

१. यथा ----- आकास सफेने -- आकाश की ओर देखता हुआ, पत्र चोने पत्र पढ़ता है, विचार याङावल्हाय -- विचार करता है, न्हासस लाहात तयाव विचार याय लूमाङावल्हाय --- नाक पर हाथ रखकर भूली बातों को सोचने का अभिनय करता है, तिपंदुं --- प्रवेशकर, तिपन युद्ध याचकाव काली नहिने -- युद्ध में कालिय नागने कृष्ण को पाश में बांध लिया ; लाहातिन दुदुओ पुयाववने -- दोनों हाथों से स्तन और गुप्तांग को ढककर आती हैं, धोकन नाना रंग नचोने --- सभीने नाना प्रकार से नृत्य किया । आदि आदि ।

२३

के अनुसार भाषा अपने रूपको इन नाटकों में बड़ी अनुकूलता के साथ संवार लेती है । शृंगार रस[१] के अवसर पर यदि भाषा में कोमलता और लालित्य का समावेश होता है तो वीर और रौद्र रस[२] के प्रसंगों

---

१. (क) माधव, तेजि कहु मोहि जनु जाह ।। ध्रु. ।।
निरदय जनु होउ प्रियतम आज । विफल होयत आजे ई मोर साज ।।
विनति मानह, पहु मोर परम सयान । तुअ विनु न रहत हमर परान ।।
(माधवानल, पृ.२६)

(ख) आलिंगन करइते हारो नहि देल । एहन अकुल मोर कइसे दुर गेल ।।
चकेवा सहि नहि सकय वियोग । कओने विधि सहब मोजे प्रियतम सोग ।
नयन निमेष भेल कलप समान । अबए तेजब सखि अपन परान ।।
नयन पुतरी दुहु घूमि टरि गेल । दशम दशाहि दरशन नहि भेल ।।
(मुदित कुवलयाश्व, पृ.२२-२३)

२. (क) विक्रमादित्य ----- रे कामसेन, सुन, आज तोहरा के जीति
कामकन्दला लय जायब ।
काम. ----- रे विक्रमादित्य, एहन गुमान की करै छह । हमर वचन
सुनह - विक्रमनृप आबे गुमान, कामसेन वीर मोहि जान ।
पाओब एहिखने तोहें बड़ लाज, रण तेजि फिरि जाह
निजपुर आज ।।
विक्र. ----- रे कामसेन, एहन अहंकार जनु करह । हमर वचन सुनह -
नृपति अधम तोहें जनु अधिकाह, कामकन्दला दय रण तेजि जाह ।
नहि तजो तोड़ब तोहर दरपे, खगपति सम तोंह सरपे ।।
(माधवानल, पृ.५५, ५६)

(ख) रे भिक्षुक ब्राह्मण ! तोहें हमरा कें अवज्ञा कए हमर देल वस्तु
हमर समक्ष कामकन्दला के देलह । तें तोहर शिर खड्गे काट्य योग्य ।
तथापि ब्राह्मण अवध्य, शास्त्रहुक प्रमाण अछ । त्वहे हमर नगर जनु
रहह ।

में उसमें कठोरता और कर्कशता भी आ जाती है । हास्य[१] के अवसर पर तो जैसे इसमें से फुहारें छूटने लगती हैं जिससे सामाजिकों का हृदय गुदगुदी से भर उठता है ।

३. रस ------- उपर्युक्त तथ्य से इस बात की पुष्टि होती है कि यहां के नाट्य साहित्य में अंग के रूप में सभी रसों की समुचित अभिव्यक्ति हुई है । कथा वस्तु में यह कहा जा चुका है कि वह शृंगार प्रधान है किन्तु शृंगार रस के अतिरेक से बचाने तथा मन: स्थिति को संतुलित रखने के लिये प्रधानक रसवत् विभिन्न रसों का समावेश उनमें इस प्रकार से किया गया है कि पाठकों या दर्शकों की अभिरुचि सतत् जागृत

---

१. (क) दर्दुर ----- रे कृष्णदास ! कओन कओन चतुर्दश विद्या ?
कृष्ण. --- रे मूर्ख दर्दुर सुनह । परदेह क्रीय, पर स्त्री लाए धर्म विध्वंस करिय, परक कीर्ति दूर करिय, मिथ्या बाजिय, परक निन्दा करिय, आत्म प्रशंसा करिय, जुआ खेलिय, चोरी करिय, वेबंचिकहु अपने खाई, बाप पुत्र भेद करायिय, पर पैशून्य करिय, कपट साक्षी होयिय, स्त्री-पुरूष कलह कराकिय । आदि ।
(माधवानल, पृ.४३)

(ख) कुबजा ----- मोर देखि के कूबर याते, ज्वान न बोले बाते ।
हाथ न दे लखि मृत की चूची, ताकि ताहि मारओं लाते ।।
हे प्राणनाथ, इन सावन सों कवन रस पाये । हम सों मिलि अब रस लेव ।
कृष्ण --- हे कूबरि, ए सब ग्वालिनी देखत हय रस के कओन समय ।
कुब्जी --- अरे छिनारियो, तुम्हारे काम भयो, अब इहां काहे रहत हो । जाव अपने घर ।
ग्वालिन--- अरे निर्लज्ज, कूबरि, तेरे लाज नहि । इहां मति रहो, जाह ।
कुब्जी ---- अरे छिनारियो, तुम सब रस लूटे । मै बहुत दुख सों आयो । रस न पायो । तुम सब मेरे दुश्मन भये । मोको रस लिबे कौन दिये । (कालिय मथन, पृ.४२)

रहे । यह भी कहा जा चुका है कि यहां के नाटकों की रचना भक्ति के प्रचार एवं भौतिक शृंगार को परिष्कृत कर आध्यात्मिक शृंगार की ओर जन-समूह को उन्मुख करने के ध्येय से ही हुई थी । अतएव शृंगार रस को ही अंगी के रूप में स्वीकृति मिली । किन्तु दरबार के विलासी वातावरण के कारण भौतिक शृंगार नग्न रूप में अपनी परिसीमा तक पहुंच गया है । कतिपय स्थलों पर रसाभास के साथ ही अनौचित्य और अश्लीलता का भी समावेश दृष्टिगोचर होता है । राधा-कृष्ण तो शृंगार के आश्रय हैं ही, किन्तु अन्य देवों को भी इससे वर्जित नहीं किया गया । अधिकांश नाटकों में कोई भी पात्र जब अपनी प्रियतमा के साथ पहलीबार रंगमंच पर प्रवेश करता है तो अपने परिचय के उपरान्त वह विश्राम करने की इच्छा प्रकट करते हुए अपनी प्रियतमा से रतिदान की याचना करता है ।[१]

---

१. (क) दशरथ की उक्ति -----

शशधर वर मुखि हरिन नयने,
तुअ कुच सिरिफल सीषार दशने ।
मदन वेदन प्रिये दूर करू आज,
गमने जितल तोहें वारन राज ।
अनुगत जने जानि करू अवधान,
किसलय अधरे राषाह परान ।।
(रामायण नाटक, पृ.८)

(ख) महादेव --- हे प्रिये, तोहर सौंदर्य देखि हमर चित थिर नहि । ते किछु कहब, से सुनू -----

हंस गमनि गोरि परिसम होयत, अति अपने सुकुमारि ।
मोहे ओरे सुताओब बहुत कोमल सज्जा, जे विधि न होयत दुआरि ।।

२६

प्रियतमाएं भी मानों सतत् तत्पर ही रहती हैं । वे भी कामातुरा होकर रतिदान की ही याचना करती हैं ।[२]

---

१. (ख) चालु -----

तोहर हरखे हमे उरू जुगे निदाबह, मांगब सुरति मोके आबे ।
तुअ गुण मोतिमालमतिहि विराजति, बहु तहु सुफल पाबे ।
अनुभव मांगब रंग रस कौतुक, हंसि-हंसि देखि तोहि मुखे ।
जनम गमायब आध देह तोह धरि बहु दिन लेब मो सुखे ।।
(उषाहरण, पृ.५)

(ग) प्रद्युम्न की उकित -------

वदन पंकज नयन खंजन,
तोहे रामा हरि लेल मोरा मन ।
जुगल पयोधर स्वयंभू महेश,
दरशन निमित्ते अएल हैं देश ।
दशन तोहर मेल उत्तम मोति ।
की कहब हमे एकर जोति ।
रति रस भाव तोहें सुजान,
तोहि सन सुन्दरि न देअ आन ।
- - - हमर रति रस करू पूर्ण (प्रभावती हरण, पृ.२६)

(घ) हेरह नयन मारि देहु रति दान, मानिनि तेजह मान ।
तोहें मोर प्राण अधार ।। ध्रु ।।
देखि वदन छवि भेल मोर आज, आनन्द तुअ रति साज ।
श्री भूपतीन्द्र कह करह विलास, पुरह पहुकर आस ।
(माधवानल, पृ.८)

२. (क) रजनी पति बिनु रजनी की सोम, पहु तेजि तरूणी काहि नहि लोभ ।
परसि पाणि मोरि निबि बंध ससइ, मुख शारद शशि देखि मन नहि सहई । (मलय गंधिनी, पृ.१७)

(ख) करह मोहि दानं ।।ध्रु ।।
तोहे प्रभुनागर सुगुन आगर रूपे मदन समान,
सोरह चतुगुण कलाक आगर रसिक गुण गण जान है ।
नारि अलपमति आन नहि गति कामे दहत शरीर,
जनम सफल कर आज पहु मोर श्री भूपतीन्द्र भन वीर है ।
(भाषा नाटक, पृ.६)

(ग) अपने हु मनमथ निरगुण नारि, पहुक अधीन देहितोहहु विहारि ।
तोहि भुज धरयिते निबि भूमि पार, रोमांकित एहि तनु कामातुर वारि
(सत्यभामा की उक्ति, उषाहरण नाटक, पृ.१८-१६)

४. चरित्र चित्रण ------- पौराणिक एवं ऐतिहासिक आख्यान एवं पात्रों के निवेश के कारण चारित्रिक वैविध्य तथा उनका मनोवैज्ञानिक विकास और विश्लेषण का इनमें अभाव है । सभी पात्र एक ही ढांचे में ढले हुए हैं और एक निश्चित् रूपरेखा के अन्तर्गत रहकर ही उन्हें अपना व्यवहार सम्पादन करना पड़ता है । नायक धीर ललित ही हुआ करता है । प्रतिनायक एवं विरोधी तत्वों के अभाव में आन्तरिक और बाह्य संघर्ष इन नाटकों में नहीं हैं । अतएव चरित्रगत एकरूपता के कारण कथानक समान गति से अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होता रहता है । गतिशीलता की अनुपस्थिति के कारण इन नाटकों में कार्य की गूढ़ता या नाटकीय व्यंग्य और उत्सुकता का भी निर्वाह नहीं हुआ है । इन सब की पूर्ति नग्न शृंगारिक वर्णनों से ही करने का प्रयास किया गया है । तथापि इन सब बातों के रहते हुए भी सम सामयिक वातावरण के परिपार्श्व में इनका अभाव नहीं खटकता है ।

५. अभिनय तथा अंक-दृश्य योजना ------- पूर्ववर्ती पृष्ठों में संकेत किया जा चुका है कि मिथिला की नृत्य-संगीत परम्परा नेपाल में बहुत ही लोकप्रिय रही है और मैथिल नाट्यकारोंने इस परम्परा का पालन अपने नाटकों में किया है । अतएव कायिक, वाचिक और आहार्य, इन तीनों प्रकार के अभिनय के कारण यहां के नाटकों में तीन वृत्तियों का समावेश भी अनायास ही हो गया है । यहां के अभिनेताओं की मंडली एवं रंगमंच के स्वरूप के संबंध में स्पष्ट रूप से कुछ भी ज्ञात नहीं है । किन्तु "जैमिनीय भरत नाटक" सदृश कुछ नाटकों में "शागा छेयेने" अर्थात् पर्दा गिरता है, शब्द के प्रयोग से यह अनुमान किया जा सकता है कि मुसलमानी शासन की क्रूर दृष्टि से दूर नेपाल के हिन्दू-शासन में विकसित रंगमंच का अस्तित्व अवश्य ही रहा होगा जो गोरखालियों के आक्रमण

से विनष्ट होकर भग्नावशेष के रूप में भी आज अप्राप्य हो चुका है । नाटकों की दृश्य-योजना के सम्यक् परीक्षण से दो बातें स्पष्ट होती हैं --- एक तो प्रयुक्त दृश्य-विधान के लिये अवश्य ही विकसित रंगमंच रहा होगा और दूसरे, दो भिन्न दृश्यों के अभिनय एवं तारतम्य - निर्वाह के लिये प्रशिक्षित और कुशल अभिनेताओं की मंडली भी रही होगी । विभिन्न प्रकार के गीति एवं नृत्य नाट्यों की सफलता तथा भाव - भंगिमाओं के तद्वत् प्रदर्शन, जिसका उल्लेख पूर्ववर्ती पृष्ठों पर किया जा चुका है, के लिये अभिनय एवं नृत्य-संगीत कला में निपुण और चतुर अभिनेता ही अपेक्षित हैं, जब कि यहां के नाट्य साहित्य में इन बातों का वर्णन बड़ी सूक्ष्मता से किया गया है । इन तथ्यों का पूर्ण ज्ञान परंपरा और प्रशिक्षण के बिना असंभव है । अतएव इन अभिनेताओं की व्यावसायिक अथवा अर्ध व्यावसायिक मंडली अवश्य ही रही होगी जो अपनी कुशलता से सामाजिकों का चाक्षुष प्रत्यक्ष के द्वारा मनोरंजन किया करती और साथ ही अभ्यास के माध्यम से प्रशिक्षण भी दिया करती थी ।

अन्त: साक्ष्य के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि इन नाटकों का अभिनय विभिन्न उत्सवों के उपलक्ष्य में हुआ करता था । अधिकांश नाटकों में सूत्रधार रंगमंच पर उपस्थित होकर, परमेश्वरी महोत्सव, यात्रा महोत्सव, भगवती महोत्सव, महादेव महोत्सव आदि उत्सव विशेष का उल्लेख कर, उस अवसर पर नाटक विशेष के अभिनय के लिये राजाज्ञा का भी उल्लेख करता है । कुछ नाटकों में उत्सव विशेष का उल्लेख न होकर राजाज्ञा मात्र का उल्लेख हुआ है । अत: ऐसा विदित होता है कि कुछ नाटकों का अभिनय राजा एवं राज्य कर्मचारियों के मनोरंजनार्थ हुआ करता था । अभिनय का समय अपरान्ह से गोधूली

की बेला तक नियत था । इस तथ्य का आधार, नाटकों में प्रत्येक अंक के प्रारंभ और अंत में प्रयुक्त शब्दावली एवं अंक विभाजन की प्रणाली है ; क्योंकि प्रत्येक अंक के प्रारंभ में "अथ प्रथम दिवसे," "अथ द्वितीय दिवसे," "अथ तृतीय दिवसे" का उल्लेख है और अंत में "इति प्रथमोऽङ्कः", "इति द्वितीयोऽङ्कः" शब्द का व्यवहार पाया जाता है । अतएव नाटक के जिस अंश का अभिनय उपरि निर्दिष्ट समय के बीच सम्पन्न हो जाता था, उस दिन के कार्यक्रम को स्थगितकर, उस अंश को एक अंक के अन्तर्गत समाविष्ट कर दिया जाता होगा । यहां के मैथिली नाट्य साहित्य के अध्ययन से इस तथ्य पर भी प्रकाश पड़ता है कि एक प्रसंग का शृंखलाबद्ध अभिनय चार दिनों तक ही चलता था, क्योंकि किसी भी नाटक के कथानक को चार अंश या अंक से अधिक में विभक्त नहीं किया गया है । इन तथ्यों की पुष्टि के लिये कालिय मथन नाटक को उदाहरण के रूप में लिया जा सकता है । प्रस्तुत नाटक में कृष्ण की विभिन्न सात लीलाओं ---- कालिय दमन लीला, प्रलम्बासुर बध, चीर हरण लीला, गोवर्धन धारण लीला, रास लीला, राधा-मान लीला और कुब्जा लीला ---- का वर्णन किया गया है । प्रथम दिवस में केवल कालिय मथन लीला का अभिनय हुआ, जिसका वर्णन अन्य लीलाओं की अपेक्षाकृत विस्तार में अधिक है । इसके अभिनय की समाप्ति तक अन्धकार छा गया होगा, अत: उस दिन के अभिनय के कार्यक्रम को इस लीला तक ही सीमित कर दिया गया होगा । दूसरे और तीसरे दिन तीन-तीन लीलाओं का अभिनय इसलिये सम्पन्न हो पाया कि इन लीलाओं का वर्णन संक्षेप में ही प्रस्तुत किया गया है । तीन दिनों तक इन विभिन्न लीलाओं का शृंखलाबद्ध अभिनय चलता रहा, इसलिये प्रस्तुत नाटक को तीन अंकों में ही विभक्त किया गया है ।

उपर्युक्त तथ्य का एक अन्य आधार यह भी है कि यहां के नाटकों में दृश्य-विधान की योजना नहीं है । यद्यपि रंगमंचस्थ पात्रों के प्रस्थान के पश्चात् जब अन्य पात्रों का प्रवेश होता है तो दो विभिन्न दृश्यों का अस्तित्व अवश्य ही प्रतिभासित होने लगता है किन्तु उनके वास्तविक अस्तित्व की स्थापना नहीं हो पाती । दृश्य विधान से कभी कभी, कथा के स्वाभाविक प्रवाह एवं तारतम्य के स्थान पर, उसमें अनभिनेयता और बोझिलता के दोषों की भी संभावना रहती है । नेपाल के मैथिली नाट्य साहित्य में दो कारणों से दृश्य-विधान की अवहेलना की गयी होगी । एक तो यह कि एक नाटक का अभिनय दो से चार दिनों तक चलता रहता था और दृश्य विधान से उसमें व्यवधान आ जाने की संभावना थी । दूसरा यह कि एक दिन के व्यवधान के पश्चात् भी जब नाटकों में दृश्यों की योजना होती तो साधारण सामाजिकों को रसानुभूति नहीं हो पाती, क्योंकि विभिन्न दृश्यों के उलझन के कारण वे मानसिक व्यायाम में ही लगे रह जाते । दो विभिन्न दृश्यों के प्रतिभासित होने के अवसर पर भी निर्देशक एवं अभिनेताओं की दक्षता तथा निपुणता से कथा-प्रवाह में किसी प्रकार का भी व्यतिरेक नहीं आने पाता था । अतएव एक दिन के कथांश में किसी प्रकार का तारतम्य भंग नहीं होने पाये, और सामाजिक बिना किसी व्यवधान के पूर्वापर प्रसंगों के संबंधों को जोड़ते हुए दृश्य काव्य का आनन्द ले सकें, अंकों को दृश्यों में विभाजित नहीं किया गया । ज्ञात होता है कि कथा-प्रवाह की स्वाभाविक गति एवं सामाजिकों में भावों को उद्बुद्धकर रसाभिव्यक्ति के लिये दृश्य-विधान की अवहेलना की गयी । यह विधान तत्कालीन प्रचलित नाट्य शैली और वातावरण के उपयुक्त ही था । अत: अन्त: साक्ष्य के आधार पर

जिन तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है वे हैं वहां की विकसित रंगमंच की परम्परा, व्यावसायिक या अर्ध व्यावसायिक निपुण और प्रशिक्षित अभिनेता की मंडली एवं इस मंडली का अभ्यास के माध्यम से प्रशिक्षण कार्य तथा अपरान्ह से गोधूलि की बेला तक नाट्याभिनय का नियत समय - जिसके कारण ही इन नाटकों के अंक और दृश्य विभाजन की प्रणाली भी पृथक् है ।

६. अंत ------ संस्कृत-नाट्य-साहित्य के सदृश ही यहां के नाटकों का अंत भरत वाक्य से होता है, यद्यपि भरत वाक्य शब्द का उल्लेख प्राप्त नहीं होता । नाटक के अंत में सभी रंगमंचस्थ पात्र एक स्वर से संस्कृत के एक श्लोक में शस्य-श्यामला धरणी, धर्म की वृद्धि, प्रजा की सुख-सुविधा, राजा की दीर्घायुता आदि के लिये प्रार्थना करते हैं । इसके पश्चात् मैथिली के एक गीत द्वारा शिव - शक्ति की प्रार्थना की जाती है और इस संसार की असारता का वर्णन करते हुए पारमार्थिक चिन्तन के द्वारा जगज्जननी के चरणों में लीन हो जाने का निर्देश भी रहता है । अधिकांश नाटकों में सबसे अंत में रचना-तिथि का भी उल्लेख कर दिया जाता है ।

७. अन्य विशेषताएं ------- पूर्ववर्ती विवेचन के अन्तर्गत निर्दिष्ट किया जा चुका है कि तीन विभिन्न शैलियाँ -- संस्कृत शैली, कीर्तनियां शैली एवं यात्रा शैली --- का यहां के नाट्य साहित्य में चमत्कारिक समन्वय हुआ है । इसके अतिरिक्त गीति नाट्य, भाव नाट्य और नृत्य नाट्यों की भी रचना प्रस्तुत की गयी । "मदालसा हरण" एवं "जैमिनीय भरत नाटक" सदृश कुछ नाटक इसके ज्वलन्त प्रमाण हैं । नाटकों की सफलता, विशेषकर नृत्य नाटक की सफलता, के लिये नृत्य-संगीत कला में अति पटु अभिनेताओं की ही अपेक्षा रहती है, क्योंकि इन

कलाओं की निपुणता के अभाव में उनकी सफलता असंभव हो जाती है। नृत्य-नाटकों के अध्ययन से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि नेपथ्य से नृत्य करते हुए ही अभिनेता रंगमंच पर प्रवेश करता है। नाटक के प्रारंभ में ही विभिन्न ताल मात्राओं का उल्लेख है, अनन्तर मुख्य अभिनेता का प्रवेश होता है। वह उन ताल मात्राओं और लयों के आधार पर नृत्य प्रस्तुत करता है और साथ ही बीच में गीत के बोल भी कहता जाता है।[१] मदालसा हरण नाटक अट्ठाइस पत्रों में समाप्त होता है जिसमें संभवत: चालीस से अधिक पूर्ण वाक्यों का प्रयोग नहीं हुआ होगा। इस में नृत्य पर ही अधिक बल दिया गया है।

यहां के नाट्य-साहित्य की एक अन्य विशेषता है नाटक-प्रयोग की रचना। 'नवदुर्गा नाटक' में विभिन्न तांत्रिक पद्धतियों के द्वारा रंगभूमि, रंगशीर्ष, स्तंभ, रंगपीठ आदि की पूजा की विधियां बतलायी गयी हैं। इनके पंचोपचार या षोडषोपचार पूजा के उपरान्त बलिप्रदान, ब्राह्मण भोजन और कुमारिका भोजन की व्यवस्था, साथ ही तांत्रिक पद्धति पर अनेक यंत्रों की विधियों का भी उल्लेख है।[२]

---

१. ।। ओम् श्री श्री श्री नाटेश्वराय नम: ।।
।। फाक ।। धायं जिगि - ३ तकुं तकुं धाराजिं - ३ तकुं नकुं धा धवा - ३ ।। तह ।। टाफें - ३ नक फें तुं तुं टाफें टा⊗ टाफें टा आदि आदि --- विमल बहय शिर सुरसरिधार, नाचत मगन शशि शेखरा ।। तह ।। टाफें - २⊗ टाफें तुं फें⊗ टा फेनक फें ताफें⊗ टाफें फें ता फेनक टाफें तुं ----------सुमति जितामित्र कह नृप ईश, देशु सदाशिव अभयवरा ।। तह ।। टाफें⊗ तुंफें टाफें ताफें टाफें -२ ताता थेरेग गिनकुटा⊗तिं गिनकुटा थेरे गेथे रेग तुं ---------- आदि आदि (मदालसा हरण पृ.४)

२. अथ यज्ञ समाविधि लिख्य ते -------- नवदुर्गा नाटक पृ.४
ततो नृत्यशक्ति देवी पूजनं -------- वही पृ.१५
ततो बलिन्ददात् ---------- वही पृ.१६
ओम् हूं गणपतये स्वाहा, बलिं गृहाण-२ स्वाहा - पृ.२०
(आदि)

निष्कर्ष ------ डा. जौनसन ने एक स्थान पर लिखा है कि किसी लेखक की न्यायपूर्ण आलोचना करते समय हमें अनिवार्य रूप से उसके समय एवं विभिन्न परिस्थितियों के मध्य विचरण करते हुए उनका प्रत्यक्ष अनुभव करना चाहिए और साथ ही उस समय की आवश्यकताओं के निरीक्षण - परीक्षण के पश्चात् उनकी पूर्ति के साधनों का भी शोध कर लेना चाहिए । अनन्तर उन साधनों का उपयोग लेखक विशेष ने किस रीति से किया है, इसके सम्यक् अध्ययन के पश्चात् ही उसके संबंध में किसी प्रकार का विवेचन प्रस्तुत किया जाना चाहिए ।[१] इस तथ्य को दृष्टि में रखते हुए पूर्ववर्ती पृष्ठों के विवेचन के परिपार्श्व में यह असंदिग्ध रूप से कहा जा सकता है कि सत्रहवीं शती के प्रारंभ से ही नेपाल में राज्याश्रय प्राप्त कर मैथिली में सफल नाटकों की रचना होने लगी थी । मिथिला की नाट्य परंपरा उक्त आधार को प्राप्तकर पल्लवित और पुष्पित होने लगी, जिसमें संस्कृत एवं प्राकृत का पूर्णरूप से बहिष्कार कर दिया गया था । डा. जयकान्त मिश्रने भी इसी तथ्य का उल्लेख करते हुए लिखा है कि नेपाल राज्य में मैथिली की लोकप्रियता में अनवरत वृद्धि होती रही और नाटकों के माध्यम से उसकी सफल अभिव्यक्ति भी होती रही । इसप्रकार ई.स. १६०० तक नेपाल में नाटकों की रचना पूर्णरूप से मैथिली भाषा में ही होती रही ।[२] नाट्य-साहित्य मर्मज्ञ डा. दशरथ ओझाने[३] नेपाल में मैथिली नाटकों के संक्षिप्त परिचय द्वारा इस मत की पुष्टि की आवश्यकता

---

१. To judge rightly of an author, we must transport ourselves to his time, and examine what were the wants of his contemporaries and what were his means of supplying them. (Dr.Johnson) Quoted in Akha Ek Adhyayan Page 4 by Shri H.H. Buch.

२. देखिए - ए हिस्ट्री ऑफ मैथिली लिट्रेचर भाग १, पृ. २५५

३. हिन्दी नाटक: उद्भव और विकास (तृतीय संस्करण) पृ. ५८

का अनुभव किया । उनकी उपर्युक्त अपेक्षा को परवर्ती विवेचन के अन्तर्गत प्रस्तुत किया जायेगा, किन्तु साथ ही उसके पूर्व यहां पूर्ववर्ती पृष्ठों में विवेचित ऐतिहासिक तथ्यों एवं वहां के नाट्य-साहित्य के स्वरूपों के संक्षिप्त परिचय के प्रकाश में भी उपर्युक्त तथ्य की पुष्टि हो जाती है । परवर्ती विवेचन में हम देखेंगे कि इन दोनों तथ्यों द्वारा उपरि निर्दिष्ट मत प्रमाणित हो जाता है ।

विधर्मी शासकों की क्रूरता और नृशंसता से त्रस्त एवं निराश हिन्दू जनताने सर्व शक्तिमान की विभिन्न लीलाओं के अनुकीर्तन में लीन होकर धर्म और संस्कृति की रक्षा की । यही कारण है कि मध्यकालीन भारतीय साहित्य में धर्म एवं भक्ति-भावना का ही प्राधान्य रहा । इस शासन की स्थापना के पश्चात् देश में विलासिता तथा ऐन्द्रियता की वृद्धि होने लगी । सांस्कृतिक, ऐतिहासिक तथा अन्य सम्पर्कों के कारण नेपाल में भी इस वातावरण का प्रभाव पड़ा । वहां के दरबार में विद्यापति तथा अन्य कवियों की शृंगारिक कविताओं का प्रचार तो था ही, किन्तु जब विलासिता का प्रवेश हुआ तो साहित्य के शुद्ध शृंगार में भौतिकता और ऐन्द्रियता का समावेश भी हुआ, और इसका प्रचार जन-सामान्य तक होने लगा । अतएव तत्कालीन लेखकों के लिए यह आवश्यक हो गया कि भक्ति-भावना के प्रसार के लिए भी वह भौतिक शृंगार-भावना की तुष्टि करे ; यह दूसरी बात है कि वह अपनी कुशलता से उसी भाव को अतीन्द्रिय शृंगार में परिवर्तित कर दे ।

मध्यकाल में नाट्यकारों के लिये रंगमंच और अभिनय की असुविधा भी कम नहीं थी । अन्यत्र कहा जा चुका है कि रंगमंच से अनभिज्ञ आक्रमण कारियोंने इसकी परम्परा को समूल विनष्ट करना प्रारंभ किया । वह

समय रंगमंच और नाट्य-साहित्य के लिए ह्रासका काल था । सहस्राब्दियों से चली आतु हुई अभिनय, रंगमंच और नाट्य-लेखन की शास्त्रीय परम्परा मृत-सी होती चली जा रही थी । अशिक्षित वर्ग शास्त्रीय परम्परा में अभिरूचि नहीं ले रहा था और दूसरी ओर जन-नाट्य शैली का शनै: शनै: विकास तो अवश्य हो रहा था, किन्तु शिक्षित एवं कट्टर पंथी वर्ग का इसके साथ सतत् अनभिरूचि और असहयोग ही रहा करता था । इसकारण, इस संघर्ष और संक्रान्ति के काल में दोनों रूपों का जन सम्पर्क छूटता जा रहा था । अतएव उस समय में आवश्यकता इस बात की थी कि इन दोनों रूपों के समन्वय-स्थल पर एक ऐसी परम्परा प्रचलित की जाती जो अपने अनुपम चमत्कार और मोहिनी शक्ति के बल पर दोनों विचार-धाराओं के जन-हृदयों को प्रभावित करती रहती । इस समन्वय के आधार पर ही दोनों परम्परा की रक्षा संभव थी । नेपाल के मैथिल नाट्यकारोंने शास्त्रीय शैली एवं जननाट्य शैली के सामान्य तत्वों के संगम पर एक ऐसी परम्परा का शिलान्यास किया जिसने तत्कालीन विषाक्त वातावरण में भी, प्रत्येक दृष्टि कोण से, शैली तथा जन-मानस को संतुलित रखा । इस नवीन रूपका इतना अधिक आकर्षण और प्रभाव बढ़ा कि आधुनिक युग में भी उसी के अनुकरण पर कतिपय नाट्य-रूपों की रचना प्रस्तुत की गयी ।

अतएव उपर्युक्त विभिन्न परिस्थितियों के परिपार्श्व में यहां के नाट्य साहित्य की विवेचना से यह नितान्त स्पष्ट हो जाता है कि चारित्रिक वैविध्य, उसका मनोवैज्ञानिक विकास, कार्य की गूढ़ता एवं नाटकीय व्यंग्य आदि तत्वों के अभाव में भी यह नाट्य-साहित्य, अपने रंगमंचीय सरलता, अभिनय कुशलता एवं स्वाभाविकता,

संगीत तत्व तथा काव्य तत्व के माध्यम से सामाजिक विभिन्न भावनाओं के चिर उद्वेलन के कारण, हिन्दी-नाट्य-साहित्य-मालिका का एक अमर और लावण्य-सुगन्धि युक्त पुष्प है ; इतना ही नहीं अपितु प्राचीन और अर्वाचीन नाट्य साहित्य की शृंखला में बीच की कड़ी है । इस परम्परा की अवहेलना से हिन्दी-नाट्य-साहित्य का अध्ययन अपूर्ण रह जाता है और उसका इतिहास भी विशृंखलित सा हो जाता है ।

ऐसे महत्वपूर्ण विषय पर अभी तक सुव्यवस्थित अध्ययन प्रस्तुत नहीं किया गया है । पं. हरप्रसाद शास्त्री, डा. बागची आदि पूर्ववर्ती अनुसंधायक विद्वानों के आधार पर डा. जयकान्त मिश्रने अपने शोध-प्रबंध "मैथिली साहित्य का इतिहास" में नेपाल के मैथिली नाटकों पर एक अध्याय में उनका परिचय मात्र अवश्य दिया है, किन्तु इसके साथ ही उक्त शोध-प्रबंध में कतिपय भ्रामक सूचनाएं भी दे दी गयी हैं, जो संक्षेप में इस प्रकार हैं -------

सर्वप्रथम, मैथिली नाटकों की संख्या-वृद्धि के लिये, सूची को भारी-भरकम बनाने के ध्येय से, उसमें ऐसे नाटकों को भी परिगणित कर लिया गया है जो वास्तव में मैथिली नाटक नहीं हैं । सुमति जितामित्र मल्ल कृत 'जैमिनीय भरत नाटक' इस तथ्य का ज्वलन्त प्रमाण है । प्रस्तुत नाटक में, जैसा कि पूर्ववर्ती पृष्ठों पर कहा जा चुका है, आद्योपान्त संस्कृत एवं नेवारी भाषा ही प्रयुक्त हुई हैं ; मैथिली का एक वाक्य भी उपलब्ध नहीं होता ।

द्वितीयत:, पुस्तकालमीय सूचीपत्र (Catalogue) के आधार पर ऐसे ग्रंथों को भी नाटक की सूची में सम्मिलित कर लिया गया है जो वास्तव में नाटक नहीं हैं, किन्तु नाटक-प्रयोग हैं । इस प्रकार के

ग्रंथों में प्रारंभ से अंत तक विभिन्न तांत्रिक पद्धतियों के द्वारा रंगपीठ, रंगशीर्ष, नृत्य शक्ति देवी पूजा आदि की पूजा-विधियों का वर्णन किया गया है । उदाहरण के लिये सुमति जितामित्र मल्ल रचित 'नवदुर्गा नाटक' को लिया जा सकता है । प्रस्तुत नाटक मात्र २५ पृष्ठों का है, जिस में विभिन्न पृष्ठों पर बलिप्रदान, धूप, दीप, नैवेद्य आदि के द्वारा रंगभूमि की पंचोपचार या षोडषोपचार पूजा, नृत्य शक्ति देवी की पूजा, कुदृष्टियों से रक्षा के लिये वाद्य यंत्रों की पूजा, अंगन्यास, करन्यासादि तांत्रिक आधार पर वर्णित हैं । इसमें विभिन्न यंत्रों का भी समावेश है । भाषा संस्कृत मिश्रित नेवारी है, मैथिली का स्पर्श मात्र भी नहीं है । ग्रंथ के अध्ययन के बिना ही इसे नाटक मान लिया गया है । इस तथ्य के स्पष्टीकरण के लिये प्रस्तुत नाटक के विभिन्न पृष्ठों से परिशिष्ट में उद्धरण दिये जा रहे हैं ।

तृतीयत:, एक ही नाटक को विभिन्न लेखकों के नाम पर उल्लेख कर दिया है । जगत् प्रकाश मल्ल रचित 'उषाहरण' नाटक को ही सुमति जितामित्र मल्ल कृत बताया गया है । इस तथ्य की पुष्टि उन्हीं की पुस्तक 'मैथिली साहित्य का इतिहास' भाग १ के पृष्ठ २६४ तथा २६६ की पाद टिप्पणी में उक्त नाटक की दी हुई सूचीपत्र संख्या से ही हो जाती है । वीर पुस्तकालय तथा सिंह दरबार पुस्तकालय, काठमांडू में खोज करने पर भी सुमति जितमित्र मल्ल कृत 'उषाहरण' प्राप्त नहीं हो सका । अतएव उपर्युक्त तथा अन्य कुछ तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उक्त शोध-प्रबंध में नाटक के संबंध में दिये गये विवरणों में अनेक "नोटिस मात्र" हैं । डा. मिश्र के पश्चात् जिन विद्वानोंने मैथिली नाट्य-साहित्य का उल्लेख किया है, उन सबने

उनकी दी हुई सूची को ही यथावत् रख दिया है ।

प्रस्तुत पंक्तियों का लेखक जब अपने शोध-कार्य के लिये काठमांडू जाने लगा था तो उसने एक दो विद्वानों से --- जिन्हें वहां की पूर्ण जानकारी थी और इसी संबंध में वे वहां से दो बार हो भी आये थे --- ग्रंथों की लिपि तथा अन्य ज्ञातव्य बातों के लिये प्रार्थना की थी । परन्तु दुर्भाग्य यह कि सामाजिक द्वेष के कारण उसे भ्रामक सूचना ही प्राप्त हो सकी । फलत: अपने श्रद्धेय विद्वान् की बातों पर विश्वास कर वह मैथिली लिपि सीख कर ही काठमांडू जाने का साहस कर सका । वहां की स्थिति से उसे बड़ी निराशा हुई, जब उसने देखा कि एक-दो नाटकों के अतिरिक्त शेष सभी नाटकों की हस्तलिखित प्रतियां नेवारी लिपि में ही उपलब्ध हैं । किन्तु तत्कालीन वीर पुस्तकालय के अध्यक्ष की सहानुभूति एवं सहायता से नेवारी लिपि का काम चलाऊ ज्ञान प्राप्त कर, तथा एक नेवारी लिपि के ज्ञाता को हस्तलिखित ग्रंथों को पढ़ने में सहायता करने के लिये दैनिक शुल्क पर नियुक्त कर, प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक ने ग्रंथों के अध्ययन के पश्चात् टिप्पणी लेना प्रारंभ किया । सहायक व्यक्ति के लिये 'ट'वर्ग तथा 'त'वर्ग में भेद नहीं था और साथ ही 'रलयो: अभेद:' के सिद्धान्त का अनुयायी भी था । अतएव, इन कठिनाइयों के कारण नाट्य-साहित्य के अध्ययन के पश्चात् प्रत्येक नाटक का उद्धरण और उसका कथा-सारांश नहीं लिया जा सका । यही कारण है कि कुछ ही नाटकों का सारांश प्रस्तुत किया जा रहा है, किन्तु इसके पूर्व विभिन्न लेखकों द्वारा रचित नाटकों का संक्षिप्त परिचय भी यहां जान लेना अपेक्षित है ।

विभिन्न लेखकों के नाटक -------- विश्वमल्ल (१५३३ ई.) और उनके उत्तराधिकारी त्रैलोक्यमल्ल (१५७२-८५ ई.) के राज्यकाल में 'विद्याविलाप' तथा कृष्ण विषायक अन्य नाटकों की रचना हुई, जिनकी खंडित प्रतियों के प्राप्त होने का उल्लेख किया गया है [१] किन्तु अब वे खंडित रूप में भी उपलब्ध नहीं हो रहे हैं ।

इनके उत्तराधिकारी जगज्ज्योतिर्मल्ल (१६१८-३३) के समय से मैथिली नाटकों की सुनिश्चित् धारा प्रवाहित होने लगती है । इनके शासन काल में तीन नाटकों की रचना हुई, जिनके नाम हैं --- मुदित कुवलयाश्व, हर गौरी विवाह और कुंज विहारी नाटक ।

इनके पौत्र जगत् प्रकाशमल्ल (१६८२) के शासन में निम्नलिखित नाटकों की रचना हुई --- उषाहरण, नलीय नाटक, पारिजात हरण, प्रभावती हरण, मलय गंधिनी और मदन चरित् ।

जगत् प्रकाशमल्ल के उत्तराधिकारी सुमति जितामित्र मल्ल (१६८२-९७) के समय में कालीय मथनोपाख्यान, मदालसा हरण, भाषा नाटक और भारत नाटक की रचना का उल्लेख मिलता है ।

इनके पश्चात् भूपतीन्द्र मल्ल (१६९५-१७२२) के आश्रय में अनेक नाटकों की रचना हुई, जिनके नाम हैं --- माधवानल, गौरी विवाह, पशुपतिप्रादुर्भावोपाख्यान (संस्कृत-मैथिली भाषायाम्), गोपीचन्द्र नाटकम् (बंगाली-मैथिली भाषायाम्), उषाहरण (८१ पृष्ठ), पद्मावती नाटक (९१ पृष्ठ), विद्याविलाप (७० पृष्ठ), रामायण नाटक (२२ पृष्ठ), कोलासुर वधोपाख्यान नाटकम् (संस्कृत-मैथिली भाषायाम्), रूकिमणी

---

१. ए हिस्ट्री ओफ मैथिली लिट्रेचर भाग १ पृ.२६२

परिणय। महाभारत नाटक, मनोरंजन नाटक ।

भातगांव के अंतिम शासक रणजितामित्र मल्ल (१७२२-७२) के शासनकाल में सबसे अधिक नाटकों की रचना हुई, -- कृष्ण चरित् (१३२ पृष्ठ), उषाहरण (१०५ पृष्ठ), इन्द्रविजय नाटक (१५१ पृष्ठ), कृष्ण कैलास यात्रोपाख्यान, कोलासुरवधोपाख्यान, मदन चरित, रामायण नाटक, माधवानल कामकन्दला आदि । इनके समय में नेवारी भाषा में भी कतिपय नाटकों की रचना हुई, जिन्हें भ्रमवश मैथिली नाटकों में परिगणित कर लिया गया है ।

पूर्ववर्ती पृष्ठों पर उल्लेख किया जा चुका है कि कांतिपुर, ललितपुर और बनिकपुर, इन तीन राज्यों में सतत् आंतरिक संघर्ष चलता रहता था ; अत: अव्यवस्था के कारण विद्वानों को इन राज्यों में आश्रय नहीं प्राप्त हो सका, फलत: साहित्यिक रचना भी नहीं हुई । वैसे किसी साहित्य-कला प्रेमी राजाने किसी विद्वान् का आदर-सत्कार किया और उनके नाम से कुछ नाटकों की रचना अवश्य हुई किन्तु सुव्यवस्थित धारा नहीं प्रवाहित हो सकी । कांतिपुर के राजा प्रताप मल्ल देव (१६३६-८६) ने वंशमणि झा को आमंत्रित किया । ये पहले जगज्जोतिर्मल्ल के दरबार में रहते थे । कांतिपुर में आश्रय प्राप्त करने के पश्चात् इन्होंने दो नाटकों की रचना की ; पहला नाटक है 'गीत दिगम्बर ।' इस नाटक की दो प्रतियां उपलब्ध हैं, एक तो मैथिली लिपि में और दूसरी प्रति बंगाली लिपि में है । मैथिली लिपि की प्रति में ताल पत्र के ३७ पृष्ठ और चार अंक हैं, और बंगाली लिपि की प्रति में तालपत्र के ४३ पृष्ठ एवं चार अंक हैं । इस नाटक में शिव-पार्वती विषयक प्रचलित आख्यानों को सरस रीति से प्रस्तुत किया गया है । वंशमणि झा के दूसरे नाटक का नाम 'मुदित मदालसा' है जो सिंह दरबार पुस्तकालय, काठमांडू में सुरक्षित है ।

प्रतापमल्ल देव के उत्तराधिकारी महीन्द्रमल्ल के शासन में केवल 'नल चरित नाटक' (१६८२ ई.)[१] की ही रचना हुई। इस नाटक की भाषा मैथिली, बंगाली और ब्रजबुली मिश्रित है। कहीं कहीं खड़ी बोली का रूप भी व्यवहृत हुआ है।

ललितपुर के राजा सिद्धिनरसिंह देव के समय में 'हरिश्चन्द्र नृत्यम्' (१६५१ ई.)[२] की रचना का उल्लेख मिलता है जिसकी भाषा में बंगाली का अंश अधिक है। इनके पश्चात् श्री निवास मल्ल के समय में 'ललित कुवलयाश्व' एवं विष्णुसिंह मल्ल के समय में 'उषाहरण' की रचना हुई।

बनिकपुर राज्य में केवल एक नाटक की ही रचना हुई जिसकी रचना-तिथि १४९६ ई. है।[३] जयरामदत्त नाम के किसी लेखकने 'पाण्डव विजय या सभा पर्व' नाटक की रचना की, जो वीर पुस्तकालय एवं सिंह दरबार पुस्तकालय, दोनों स्थानों पर सुरक्षित है। वीर पुस्तकालय में इस नाटक की सूचीपत्र (Catalogue) संख्या ६६४ है।

कृतियों से संबंधित उपर्युक्त विवरण के अतिरिक्त कुछ का संक्षिप्त परिचय कथा-सार सहित इस प्रकार है।

<u>रचनाएं</u> ------- हमारे अध्ययन की परिधि में आनेवाले नेपाल के मैथिली नाटकों में से प्राय: सभी रचनाएं अप्रकाशित ही हैं और उन में से अनेक तो अब तक विद्वानों तथा आलोचकों के अध्ययनों से अज्ञात

---

१. ए हिस्ट्री ओफ मैथिली लिट्रेचर भाग १ पृ.२८१
२. वही, पृ.२८२
३. वही, पृ.२८४

होने के कारण अछूती ही रही हैं । अतएव ऐसी बहुमूल्य एवं अज्ञातप्राय सामग्री के विवरण, प्रस्तुत प्रसंग पर कालक्रमानुसार विस्तार पूर्वक दिये जा रहे हैं ।

१. मुदित कुवलपाश्व --------

यह जगज्जोतिर्मल्ल रचित ४२ पृष्ठ और चार अंकों का एक सफल एवं सरस नाटक है । नाटक का आरंभ शिव की वन्दना से होता है और नाटक के अंत में लेखकने उसके कथागत आधार को निर्दिष्ट कर दिया है कि मार्कण्डेय पुराण के अन्तर्गत मदालसा उपाख्यान को देखकर उसने यह रचना प्रस्तुत की है । अन्तःसाक्ष्य के आधार पर इस नाटक की रचना तिथि शाके १५५० (१६२८ ई.), बैशाख शुक्ल त्रयोदशी बुधवार है । इसका प्रारंभ और अंत इस प्रकार है -------

प्रारंभ -------- श्री गुरूभ्यो नमः । श्री परदेवतायै नमः । श्री सावरणार्द्ध - नृत्यानन्द स्वरूपेभ्यो नमः । कुवलयाश्व मदालसा नाटक गीतं लिख्यते ।। नान्दी गीतं ।। राज विजय ।।

राजत कनक वर्ण ईश गौरी संग एकहि कलेवर वासे पुर आसे ।
शिर सुरसरिधार कुसुम मालावर इन्दु सिन्दूर विन्दु सोहे मन मोहे ।
कान कुंडल डोल फनिमनि निर्मल हार माल किंनि बाजे भल छाजे ।
बाघ छाल रूण्डमाल नित मोतिमहार पहिरन ई सब रीति जग जीति ।
चण्डी चरण चित शिव करू गति मुदा जगज्योति एहो गाने अवधाने ।

अंत --------

कायेन मनसा वाचा यच्च चौर्यं त्रिकालिकम् ।
माया विधीयते मातर्भवति तेन तुष्यतु ।।

४३

मार्कण्डेय पुराणान्तर्गत मेतन्मदालसोपाख्यानं दृष्ट्वा भाषागीतेन्नाट्य चरितं विचित्र रस भाव युतम् । श्रीमता जगज्ज्योतिर्मल्ल भूपति भूरिणा । अत्र शंका न कर्त्तव्या । कथा समाप्ता । परैरीति । खसर हर मुखेन्दु । १५५० । व्यंजिते शाकवर्षे स्मर तिथि-बुधे मैत्रेयानने ज्येष्ठे पक्षे बुधवर कृत संगे: जगज्ज्योति नृपै: मुदित कुवलयाश्वं चारू चक्रे । इति श्री मत् श्री श्री जय जगज्ज्योतिर्मल्ल विरचितं मुदित कुवलयाश्व नाटकं समाप्तम् ।।

कथा-सार -------- महाराज शत्रुजित का दरबार लगा हुआ है । गालव ऋषि एक कुवलय नामक अश्व के साथ प्रवेश कर महाराज से निवेदन करते हैं कि राक्षसों के उपद्रव के कारण उन्हें निर्विघ्न यज्ञ करना कठिन हो गया है । अतएव वे यज्ञ-रक्षार्थ अपने कुमार को इस अश्व पर आरूढ़ करके भेजें । कुवलय की गति तीनों लोकों में अव्याहत है । महाराज अपने राजकुमार को भेजने का वचन देकर विश्रामार्थ अन्त:पुर जाते हैं । रानी उपालंभ के स्वर में सखी के व्याज से कहती है कि हे सखी, नितम्ब-भार के कारण चलने में कठिनाई का अनुभव हो रहा है, सर्वांग में मदन-पीड़ा हो रही है, जिससे सतत् आंखें अलसाई-सी रहती हैं और रात में निन्द भी नहीं आती । चतुर भ्रमर तो स्तन-अधर-पुराग का आस्वादन कर ही नहीं रहा है ; संभवत: उसके हृदय में अब वैराग्य का भाव आ गया है ।

इस आवेश के शमन के लिये उपदेश के स्वर में महाराज उत्तर देते हैं कि सुकुमारी को ब्रीड़ा का परित्याग करते देख कर किसे नहीं आश्चर्य होगा ? यौवन तो क्षणभंगुर है, अत: उसके तरंगों में बह जाना चतुराई नहीं । अत: मान का परित्याग कर प्रेमालाप में व्यस्त हो जाने का ही अवसर समुपस्थित है । इस प्रकार के प्रेम संभाषण के साथ इस नाटक का प्रथम दृश्य समाप्त होता है ।

दूसरे दृश्य में मुनिगण यज्ञ कर रहे हैं और कुवलयाश्व मख की रक्षा के लिये तत्पर हैं । यज्ञ-धूम की सुगन्धि से पातालकेतु नामक राक्षस शूकर के रूप में आकर यज्ञ-विध्वंश करना चाहता है, किन्तु कुवलयाश्व के खड्ग प्रहार से भयभीत होकर वह पाताल लोक की ओर भाग जाता है । राजकुमार भी उसका पीछा करते हुए अश्व की सहायता से वहां पहुंचते हैं, और उनके आश्चर्य एवं विस्मय की सीमा नहीं रहती जब वे रूण्ड-मुण्ड के बीच एक लावण्यमयी नारी-मूर्ति को दीनावस्था में देखते हैं । वे उस मूर्ति के समीपस्थ कुण्डला नाम की सखी से परिचय की जिज्ञासा प्रकट करते हैं । सखी बताती है कि इस राजकुमारी का नाम मदालसा है और बज्रकेतु का पुत्र पातालकेतु इसे हर कर यहां ले आया है । इस प्रकार परिचय प्राप्त करने के पश्चात् वे बड़े आवेग से मदालसा से प्रेम याचना करते हैं । मदालसा भी इन पर आकर्षित थी । वह कहती है कि अब तक आश्रय के अभाव में उसका यौवन-रस निरर्थक ही बहता रहा है । मदन-व्याधि एवं राक्षस की यातना से त्रस्त होकर वह पशुयोनि में जन्म लेना श्रेयस्कर समझती है किन्तु युवती होकर रहने की महत्वाकांक्षा उसकी नहीं है । राजकुमार से वह प्रेम करती है किन्तु राक्षस से उसे भय भी लग रहा है । अत: प्रेम और सन्देह के कारण उसका चित्त चंचल हो उठता है ।

इसी समय आकाशवाणी होती है कि शंका समुचित नहीं है ; अति शीघ्र ही नारद ऋषि तुम दोनों का विवाह-संस्कार सम्पन्न करायेंगे और तत्क्षण ही नेपथ्य से उन दोनों के सविधि विवाह की सूचना भी दे दी जाती है । नव दम्पत्ति केलि-भवन में रस-रंग का आस्वाद कर रहे हैं । मदालसा के रूप-सौंदर्य से अभिभूत होकर प्रेमातिरेक

में कुवलयाश्व उसका वर्णन करते हुए अधर-रस की याचना करते हैं ।[१] मदालसा भी एक गीत के द्वारा अपने प्रियतम के रूप का वर्णन करती हुई कहती है कि हठ से रस भंग हो जाता है, अत: कमल-कली के विकसित होने पर इच्छित पराग-पान करना ही चतुराई है । इस उमंग एवं उत्साह की बेला में शृंगार में रौद्र के समान पातालकेतु गर्जना करते हुए राजकुमार को मल्ल युद्ध के लिए आह्वान करता है । इस युद्ध में राजकुमार उस राक्षस को यमपुर भेज देते हैं और अपनी प्रियतमा के साथ अपने राज्य वापस आ जाते हैं ।

एक समय दोनों प्रेमी सरोवर में जल-क्रीड़ा कर रहे हैं, उस समय मदालसा के भ्रमर सदृश, अंस अवलंबित चिकुर जाल से अनवरत जल-विन्दु को पतित होते देखकर कुवलयाश्व का हृदय उसी के साथ एक रस हो जाता है और वे कहते है कि मुख-चन्द्र के पास केश-पाश ऐसे फैले हुए हैं मानों निष्कलंक चन्द्र को राहु ग्रस रहा है । मोती के हार को पुण्यतोया समझकर मनसिज कुच-कंचन-घट से फल की प्राप्याशा में महादान कर रहा है ।[२] इस प्रशंसा से मदालसा की हृदय-कलिका

---

१. कनक लता फुल अधर सुरंग, मदन जोड़ल धनु भौंहे विभंग ।
नयनक रंजन अंजन देल, कमल उपर जनि खंजन खेल ।
सिन्दूर सूर वदन शशि कांति, दशनक ज्योति मोतिम फल भांति ।
विहि निरमान देखल ई आज, अधिक असंभव कहइते लाज ।
नृप जगज्योति एहो रस मान, पुनमत जे होअ एहो गुण जान ।
(प्रस्तुत नाटक, पृ.१४)

२. रमणी करए सनाने, उघसल चिकुर परए मुखठामें ।
ते उपजल मोहि संका, राहु गरस जनि शशि निकलंका ।
हार सुरसरि तीर जानी, समुचित समय अधिक फल मानी ।
कुच कंचन घट जोरे, करत महादान मनसिज वीरे ।
नृप जगजोति एहो गावे, सुदिन पलट जाहि से ओहि पावे ।
(प्रस्तुत नाटक, पृ.१७)

खिल उठती है । कुछ क्षण पश्चात् वह जल-विहार से थककर सुस्ताने के लिये सरोवर के तटस्थ वृक्ष की छाया में बैठ जाती है । उस समय पुन: कुवलयाश्व का मन चंचल हो उठता है और भावावेश के उद्गार में वे अपनी प्रियतमा का नख-शिख वर्णन करते हैं ।[१]

इसी प्रकार हास-परिहास एवं उमंग-उत्साह में उनका समय व्यतीत हो रहा था । एक दिन कुवलयाश्व घूमते हुए यमुना-तट पर दूर निकल जाते हैं और वहां एक सुरम्य ऋषि के आश्रम देखकर विश्राम के लिये पहुंचते हैं । पातालकेतु का भाई तालकेतु अपने अग्रज की मृत्यु का बदला लेने के लिये कपट ऋषि का रूप धारण कर, माया निर्मित, यज्ञ साधनों से पूर्ण, उसी सुरम्य आश्रम में कुवलयाश्व के आगमन की प्रतीक्षा में बैठा हुआ है । वे जब आते हैं तो सुअवसर को हाथ आया देखकर वह राक्षस उनसे कहता है कि इस सरोवर में निवास करनेवाला एक भयंकर राक्षस मेरे यज्ञ में सतत् विघ्न उपस्थित किया करता है । अत: आप अपना मणिमय कवच-कुण्डलादि आभूषण यहीं रख कर उस राक्षस के वध से इस तपोवन को निरापद करें । भ्रम में आकर कुवलयाश्व उस सरोवर में प्रवेश करते हैं । इधर वह मायावी राक्षस

---

१. आनन नयन देब के उपमा, चांद कमल दुहु हीन ।
शशधर दिवस होअ नहि सुन्दर, सरसिज रयनि मलीन ।।

दसन अधर तुअ तुलना न मिलय, दाड़िम बीज पछार ।
ओहि पर कीट ओहि कुन्दि कुन्दे रे, जतनहि करि अगमार ।।

नास वाणि कीर ओ पिकसर, के ओहिकरत समान ।
कीर कठोर कठोर ओ कोकिल, एक फटुप एकर गान ।।

एहि असार संसारहि साहलि, विहि तोहें एकसरि सारे ।
मदन बेआधि मोहि उपजल, तोंहे ताहि करह सम्हारे ।।

त्रिभुवन मंदिर से बड़ सुन्दर, जे पर आरति आबे ।
चण्डी चरणकमल मधुकर वर, नृप जगजोतिमल गावे ।।
(प्रस्तुत नाटक, पृ.१८)

उनके आभूषणादि को लेकर उनके पिता शत्रुजित के दरबार में आकर बताता है कि यज्ञ की रक्षा करते हुए वे युद्ध में मारे गये हैं । इस कल्पनातीत हृदय-विदारक समाचार से सम्पूर्ण राज-भवन शोक-सागर में डूब जाता है । मदालसा तो संज्ञा-हीन होकर गिर पड़ती है । संज्ञा लाभ करने पर वह विलाप करती हुई कहती है कि चन्द्र के बिना रात्रि, सूर्य के बिना दिन, विद्युल्लता के बिना बादल और पति के बिना पत्नी, सभी शोभाहीन और निरर्थक हैं । पूर्व स्मृतियों के कारण उसका हृदय विलख उठता है एवं प्रियतम के शोक को सहन करने में असमर्थ होकर वह अपने नश्वर शरीर को चिता में भस्मकर पति लोक को प्रस्थान कर देती है ।

कुवलयाश्व जब सरोवर से बाहर आते हैं तो आश्रम सहित ऋषि को वहां न देखकर उन्हें बड़ा आश्चर्य होता है । स्थिति को समझने में देर नहीं लगती और वे शीघ्रता से राजभवन आते हैं । यहां मदालसा का समाचार प्राप्त कर उनका हृदय वीदीर्ण हो जाता है और शोकाकुल होकर वे कहते हैं कि प्रियतमा के बिना यह राज-भवन मेरे लिये गहन वन बन गया है, चारों दिशाओं से जैसे ज्वालाएं फूट कर मेरे शरीर को भस्म करना चाह रही हैं, आखों में सावन-भादो की झड़ी लगी हुई है, इस विषाम परिस्थिति में सांत्वना देनेवाला कोई नहीं मिल रहा है । सभी ओर से वे अपने को निरूपाय और असहाय पाकर गरल-पान से अपनी जीवन-लीला को समाप्त कर देने का विचार करते हैं । किन्तु अपने वृद्ध माता-पिता की सेवा का ध्यान आ जाने पर वे जीवन धारण करना ही श्रेयस्कर समझते हैं । इनकी सेवा से अतिरिक्त शेष समय वे एकान्त में या किसी सरोवर के किनारे व्यतीत किया करते हैं ।

इसी बीच उन्हें दो नाग पुत्रों से मित्रता हो जाती है और इनके सौहार्द्रपूर्ण व्यवहार से वे अत्यधिक प्रभावित होते हैं । प्रत्युपकार में वे नाग-पुत्र अपने मित्र को कुछ उपहार देना चाहते हैं किन्तु उन्हें किसी वस्तु का अभाव ही नहीं दिखायी देता । कुछ समय पश्चात् उन्हें ज्ञात हो जाता कि अपनी प्रियतमा की मृत्यु के शोक से उनके मित्र सतत् अशान्त चित्त रहा करते हैं । इस शोक के निवारण के लिये वे अपने पिता, नागराज कम्बलाश्वतर, से हठ कर बैठते हैं । नागराज सर्वप्रथम सरस्वती की तपस्या कर वर प्राप्त करते हैं और पश्चात् शिव की कठोर तपस्या करने लग जाते हैं । तपस्या से संतुष्ट होकर महादेव, मदालसा के उसी रूप में उनके यहाँ प्रकट होने का वर देते हैं । मदालसा को प्राप्त करने के पश्चात् नागराज एक दिन कुवलयाश्व को आदर एवं आग्रह के साथ निमंत्रित करते हैं । उन्हें सम्पूर्ण वृतान्त बतलाकर दो विरही प्रेमी-हृदयों का पुनर्मिलन कराया जाता है । इस शुभ अवसर पर नागकन्याएं दोनों का शृंगार रकती हैं और मदालसा का तो विशेष रूप से सोलहो शृंगार करती हैं ।[१] अपनी प्रेयसी के इस रूप को देखकर कुवलयाश्व का चिर विरह-दग्ध हृदय चंचल हो उठता है और वे अपनी प्रियतमा को आलिंगन-पाश में लेकर अधर-रस का पान करते हुए रतिदान की याचना करते हैं ।

---

१. निरमल तनु कए वसन विराजे, सिर सिन्दूर दए लोचन आंजे ।
सोन सुगन्ध दुहु मिलल आज, जाहि विहि दाहिन ताहिपए छाज ।
चिंकुर सम्हारि सुरभि फूल माल, बेसर पहिरि लंबित उरहार ।
नूपुर किंकिनि कर कत लोल, मणिगिम भूषण कुंडल डोल ।
कर कंकन मुख रंजन पान, चन्दन लेपि तोहें भाव सुजान ।
नृप जगजोति कह हँ उकुति, सोरह सिंगार बुझाव जुगुति ।
(प्रस्तुत नाटक पृ. ३६)

इस प्रकार हास-परिहास और केलि-क्रीड़ा में वे दोनों कुछ दिनों तक नाग लोक में ही रहते हैं और पश्चात् अपनी राजधानी वापस आजाते हैं । इस शुभ समाचार से सम्पूर्ण राज-भवन में आनन्द छा जाता है । अंत में उनके माता-पिता इस संसार के सुख-दुखादि माया-पाश से निवृत्ति पाने के लिये अपने पुत्र पर राज्य-भार सौंप कर तपोवन का अनुसरण करते हैं ।

प्रस्तुत नाटक में एक गीत के द्वारा नृत्य की परम्परा बतायी गयी है, जो इस प्रकार है --------

।। नादोत्पत्ति गीतं ।। पंचम ।। झूमरि ।।
नृत्य गीत वाद तिनू देवी देत चुफि (१)
भगवति सिरिजल अवशेष बुफि ।
तन्हि पाए विधि लए भरत के देल,
तन्हि पुनु शिव लग प्रकटित कएल ।
प्रथमहिनाद ब्रह्म शिव एक जान,
तण्डु मुखे भरत के तन्हि देल ज्ञान ।
नाट्य पुनु सिखाउलि उषा पारवती,
ते पुनु सिखाउलि सबे द्वारका जुवती ।
ते पुनु पढ़ाउलि सबे गोरटू नागरी,
भरत उषाहि मिलि पहुदी सगरी ।
नृप जगजोति कह नृत्य उतपती,
गान वाद नृत्य ताल शिवे देथि मती ।

५०

२. कुञ्जविहारी नाटक -------

जगज्ज्योतिर्मल्ल रचित यह एक गीति नाट्य है । इसमें राधा-कृष्ण की प्रेम और मान लीला का सरस चित्रण प्रस्तुत किया गया है । प्रस्तुत नाटक का प्रारंभ इन शब्दों से होता है -----

।। ओम् नमस्तस्यै ।। श्री गुरूभ्यो नमः ।। परदेवतायै नमः ।। सावरणार्द्ध नारीश्वर नृत्यानन्द स्वरूपेभ्यो नमः ।। श्री कुञ्जविहारी नाम नाटक लिख्यते ।। प्रथमं नांदी गीतं ।। राज विजय ।। जति ।।
अनल सुरूज शशि तिनहु नयन जत अभिमत देअ पांचहु वदने ।
वराभय शूल हाथ डमरू बजावे ताहि शिव परसादे सब सुख पावे ।
गजानन षडानन सुत दुहु रंगे मंगल दायक रूप अछ बड़ रंगे ।
चांद गांग तनु तीनु धवल प्रगासे नृप जगजोति मन तुअ पद आसे ।

अंत --------

।। आरति गीतं ।। मारू ।।

पवन आनि अवरूंधित कए कहु शरीर पापमय जारी,
पिउष आनि पुनु ताहि जिआए कहु लहु से देव बिसारी ।
हे मन ए विधि आरति लाय -----
काम क्रोध लोभ मोह महारिपु जे विधि दूरहि पराय ।। ध्रु ।।
अनिल अनल जल भूमि अकासहि पुनु उपजाई अदेह,
परसि पद परपरम जोति लय ताहि सञो राखि अनेह ।
जरामरण जमराज पराभव चिन्तह ई सबे उपाय,
न रह अज्ञान महातम आरति तेजहि मंगल पाय ।
माया पास पसार देखि कहु दिने दिने उपजु तरास,
गुरूगमे बूझि नृपति जगजोतिमल्ल शिवक भगति पए आस ।
इति कुंजविहारी नाम नाटकं सम्पूर्णम् ।।

कथा-सार ------- मधु - ऋतु की राका है, पराग-भार से मन्द-मन्द मलय पवन का झोंका आ रहा है । वृक्ष कोमल किसलयों से लदे हुए हैं, पुष्प-रस के लोभ से भ्रमर यत्र तत्र गुंजार कर रहे हैं । कोयल की मधुर कूक से वातावरण स्निग्ध हो गया है । मादकता के कारण ही यमुना में हिलोरें उठ रही हैं । कामदेव धनुष-बाण लिये गुणज्जित सेना के साथ प्रेमी हृदयों को विद्ध करने के लिये तत्पर बैठे हुए हैं । ऐसे वातावरण के बीच कृष्ण का प्रवेश होता है । उक्त वातावरण का प्रभाव उनके हृदय पर पड़ता है और वे षट् ऋतु-वर्णन के माध्यम से उसे व्यक्त करते हैं ।[१]

कृष्ण तो स्वयं ही उस मादक वातावरण से काम-पीड़ित हैं, और जब वे उस कुंज में आते हैं तो वहां पर उनके लिये प्रतीक्षा करती हुई राधिका मिल जाती हैं । यह आशातीत मिलन अग्नि में आहूति का कार्य करता है । कृष्ण तत्क्षण ही राधा से अधर-रसादि केलि के लिए अनुनय-विनय करने लगते हैं । किन्तु राधा तो मानिनी

---

१. समय वसन्त विपिनघन मोह, परिहरि लाज मुनि हुं कां मोह ।
ऋतु करिए विलास ।। ध्रु. ।।
तप ऋतु सबहि सुशीतल जीव, विरहिणी रजणि दिनहि दिन खीन ।
वारिस घर हर सबहि सोहाव, जल घरे धोयल धुरि महिताव ।
सरद सोहाओन सरधर भास, पांक पखारल जल परगास ।
हिम ऋतु जुवती हृदयालाय, दिन जकें रसिक विरह घटि जाय ।
शिशिर सबहि मन तपन उछाह, कमलिनी वन हिम जले भेल दाह ।
नृप जगजोतिमल मने गुण गावे, छओ ऋतु रस पुन मत जनपावे ।
(प्रस्तुत नाटक, पृ. ६)

होकर बैठी हुई हैं । कृष्ण मदन-तपन को सहन नहीं कर पा रहे हैं, उन्हें रोमांच हो आता और मन चंचल हो उठता है । अतएव वे अति विह्वलता से राधा के आंचल को हटाकर कंचुकी-बंधन खोल देते हैं और नख-क्षत करते हुए गाढ़ालिंगन में बांधकर उनके अधरों पर चुम्बनों की झड़ी लगा देते हैं । राधा अवन्त मुख और प्रतिरोध रहित उन कठिन कोमल प्रहारों को सहन करती जा रही हैं । उन्हें इस दुख में सुख का ही अनुभव हो रहा है । असमय में किसी दूती के आगमन से वे विलग हो जाते हैं । इसी प्रकार इन दोनों का रति-रंग चल रहा है ।

इस पृष्ठभूमि के पश्चात् अकस्मात् कृष्ण के मथुरा गमन से गोपियां विरह-व्यथित हो जाती हैं । राधा की अवस्था तो दशमतक पहुंच गयी है । वे कहती हैं --"मधुरे मधुरे कोकिल गाव, विहि मोर वाम मरण पए भाव ।" उनका हृदय पूर्वस्मृति के कारण मादक वातावरण में क्रन्दन करने लगता है और निरवलम्ब विवशता के कारण उनके नयनों के कोर सतत् भींगे हुए ही रहते हैं ।[१]

इतने में एक दूती आती है और आश्वासन देती हुई कहती है कि वह मथुरा जाकर उनकी दशा का वर्णन कृष्ण से करेगी और बलपूर्वक उन्हें यहां लेती आयेगी, जिससे उनके विरह का अन्त हो जायेगा । तदनुसार वह सभी शृंगार प्रसाधनों से अलंकृत होकर कृष्ण

---

१. हरि धुनि हरि सुनि हिय साल, हरि पेखि हरि रस सहए न पार ।
हरि देखि हरि-३ जे संताव, हरि बैसि हरि मोहि किछु न सोहाव ।
सरसिज दल हरि जकें जीव डोल, हरि सम होअ मोहि हरिधन रोल ।
हरि भेल हार हरिहि पए बुझ, हरि सम लोचन किछुओ न सुझ ।
हरिपदे नृप जग जोतिमल गाव, हरि गमिनी हरि अनुजहि पाव ।
(प्रस्तुत नाटक, पृ.८)

के निकट जाती है और हाव-भावों से अपनी आकांक्षा संकेत रूप से ही प्रकट करती है । कृष्ण भी अनंग-तरंगों में बहते हुए अधर-पान एवं गाढ़ालिंगन से उस दूती की अभिलाषा की पूर्ति कर देते हैं । दूती के वापस आने पर उसके "निःशेषच्युत चन्दनं स्तनतटं निमृष्ट रागोधरः"-- बिखरे अलक जाल और शुष्क अधर को देखकर राधा की स्थिति समझने में देर नहीं लगती, किन्तु वे निरूपाय और विवश हैं । अतः खीझकर ही रह जाती हैं ।

कृष्ण के आगमन पर उनकी सुप्त वेदना जागृत हो जाती है और उपालंभ के स्वर में कहती हैं कि इस संसार में सौत के समान कुछ भी दुख दायी नहीं है । यदि उसे मधु दिया जाये तो उसे वह विष समझती है । सांप के काटने पर उपचार संभव है किन्तु सौत के दंश से छुटकारा नहीं, क्योंकि दृष्टि-समक्ष ही वह बड़ी निर्दयता से प्रियतम को छीन लेती है और प्रियतम भी कपटी और निष्ठुर बन जाता है । राधा के हृदय को इतने से ही संतोष नहीं होता है । अतः वे कृष्ण को फटकारती हुई कहती हैं कि मनुष्य का स्वभाव भ्रमर-सदृश ही होता है । अपनी निर्बलता के कारण पुरूष किसी वस्तु के विषय में बिना सोचे समझे अधर्मों के संग भी रस-रंग करने लग जाता है । निन्दा और परिहास वह सुन सकता है किन्तु विषय-वासना का दमन नहीं कर सकता । राधा कहती हैं कि तुम में भी पुरूषोचित सभी दुर्बलताएं विद्यमान हैं, अतः तुम्हारा संग त्यागने में ही कल्याण है ।

अपनी प्रेमिका की इस **अवमानना** से कृष्ण का पौरूष जग उठता है और वे इसे सहन करने में अपने को असमर्थ पा रहे हैं ।

वे कहते हैं कि नारी और पानी की गति सतत् निम्नगामिनी ही हुआ करती है । कपट कोप और कुलटा रीति तो ललना का जैसे स्वाभाविक गुण हो गया है । वे अपने प्रियतम से भी बात छुपा लिया करती हैं और दोष पुरूषों को देती हैं । वे सतत् विपरीत आचरण ही किया करती हैं जिससे उन्हें 'वामा' कहा जाता है ।

राधा भी तो मानिनी हैं । वे इससे भी अधिक तीखे वाग्-वाणों से प्रहार करती हुई कहती हैं -------

चातर चकमक चिर नहि रहई, कुपुरूष प्रेम दिवस दुई बहई ।
हुनकर दोष धरह की गोई, सहजक कुटिल सोफ नहि होई ।
बांसक डलिया जल जओ धरई, जतन हुं राखिअ अवस पए बहई ।
काच कटार काम नहि फवई, अवसर भांगि जोर नहि अबई ।
तन्हिके आसे जौवन मोर घटई, लाभक लोभे मूलओ धन परई ।
ए सखि तन्हिकर नाम नहि लेबई, सुनितहिं हृदय पराभव पबई ।
नृप जगजोति अपन मति-मनई, विघटल प्रेम सुदिन से घटबई ।

इसी अवसर पर राधा की अन्य सखियां भी आजाती हैं और तब सब मिलकर कृष्ण को व्यंग्य - कटूक्तियों से विद्ध करने लग जाती हैं । पराजित होकर कृष्ण उनसे क्षमा याचना करते हैं । इस विजय और विनम्रता से गोपियों का हृदय आह्लादित हो जाता है और वे कहती हैं कि हे कृष्ण, तुम तो सकल संसार के सार रूप में हमारे हृदय में निवास कर रहे हो । हमारी जाति ग्वालिन की है । ज्ञान तो नहीं किन्तु एकनिष्ठ प्रेम ही हमारे जीवन का आधार है । हम इसके अतिरिक्त और दे ही क्या सकती हैं । तुमने हमारा सर्वस्व ले लिया है, अतएव अब सदैव हमारे संग ही रहा करो । कृष्ण उन्हें आश्वासन

देते हैं और इस क्षणिक-निस्सार जीवन से मुक्ति प्राप्त करने का मार्ग बताते हुए कहते हैं कि मन को वश में करके ध्यानावस्थित होकर दिवा-रात्रि आत्मा में ही शिव-शक्ति का दर्शन करना चाहिये जिससे जीवन सफल हो जाये ।

समीक्षा ----- इस गीति-नाट्य के गीतों के अनुशीलन से यह स्पष्टत: लक्षित होता है कि इन में विद्यापति की भाषा-शैली और भाव प्रतिध्वनित हो रहे हैं, साथ ही लेखक एक नाट्यकार से अधिक कविरूप में ही हमारे समक्ष उपस्थित होता है और कवित्व के प्रदर्शन के लिये कूट पदों का भी समावेश करता है । जैसा कि पूर्ववर्ती पृष्ठों पर कहा जा चुका है कि दरबार के विलासी वातावरण में इसी प्रकार के गीतों की अपेक्षा रहा करती थी, किन्तु फिर भी शृंगार अपनी सीमा के अन्तर्गत ही वर्णित है ।

३. उदाहरण --------

प्रस्तुत नाटक चार अंक एवं ५०×२ पृष्ठों में जगत् प्रकाश मल्ल विरचित एक पौराणिक नाटक है । इसका प्रारंभ और अंत इस प्रकार है ---

प्रारंभ ------- ।। ओम् नम: नाटेश्वराभ्याम् ।। नांदी ।। मालव ।। चौ ।।

मृगधर महेसर गंग जटा पर खट्वांगहि त्रिशूल तोरा ।
पात्र डमरू वर सब सत्र अत्र मल लिंग मुरूतिधर भोरा ।।
अभयहि जपमाल विधुहिललाट तुअ अरधांग पार्वति प्राने ।
वीर मसान रह निरंजन शून्य थर योग समाधि अति निधाने ।।
वृषाम चढ़ल शिव बहुत हुन हुनहु देवि देखि देखि पयाने ।
पंच वदन हर बाघ चरमे धोती भमकरि अंग तराने ।।
दिग्वसन तोह बनावल अपनु के अहिपति भूषण गुमाजे ।
कविगण मुकुटहि जगत चंद अबे जननिहि सेबव काजे ।।

५६

नान्दी श्लोक -----

यत्र हेमगिरि गौरमेक तो हारहीर सुषामा महोन्यत: ।
पातु कम्बु सितमिन्दुशेखरं पार्वती गिरिश योस्तनु जगत् ।।

शक्ति के गीत एवं पुष्पांजलि श्लोक के पश्चात् -----

सूत्रधार ----- अलमति विस्तरेण । हे प्रिये, एतय आउ ।

नटी ------ (तिप दुं) हे प्राणनाथ, हमर प्रणाम । की कारणे आह्वान कयल ।

सूत्र. ------ हे प्रिये, आज परमेश्वरी महोत्सवे नाना देशक पंडितगण एकत्र भेल अछ । एहि सभक अनुरंजनार्थ उषाहरण नाटक अभिनय करू । श्री श्री जय जगत् प्रकाश मल्ल देवक ज्येष्ठ राजकुमार श्री श्री जय जितारिमल्ल देवक ई आज्ञा भेल अछ ।

अंत --------

गावो भवन्तु दोहिल्यो धरणी शस्य संभवा ।
ब्राह्मणा: निर्भया: सन्तु प्रजा: सन्तु निरीतय: ।।

श्री श्री जय जगत् प्रकाशमल्ल देवस्य, श्री श्री जयजितामित्र मल्ल देवस्य, श्री श्री उग्रमल्ल देवस्य सप्तांग राज्यवृद्धिरस्तु ।। सर्वे - तथास्तु ।।

।। पंचम ।। चौ ।।

अथिर कलेवर जानु हे कमल पातक जल तूले ।। ध्रु. ।।
भवन कनक जन रजत आदि जत थिर नहि रह सब जाने ।
सुत मित सब धन सुखदुख शरीर अथिर जानल मने ।।
सिरजल शरीर हँसर सब कां मन नृप अवयव दासे ।
मनहि पावए पुने अधरम अपजय मन वसे पावए तरासे ।।
जगत् प्रकाश आए कएल तोहर, चांद शेखर दुहु भाय ।
जगत् जननि पद हेरहि राखह दुहु जनक दुहु काय ।।

इति श्री श्री जय जगत् प्रकाश मल्ल देव कृतं उषाहरण नाम नाटकं समाप्तम् ।।

५७

समीक्षा -------

प्रस्तुत नाटक की कथावस्तु में विष्णुपुराण में वर्णित उषा चरित से समानता पायी जाती है किन्तु एक दो स्थलों पर विभिन्नता भी है [१] जो लेखक की मौलिकता की परिचायिका कही जा सकती है। इन विभिन्नताओं के समावेश से इस नाटक में रोचकता और नाटकीयता का सहज ही बोध होता है जो परवर्ती विवेचनों से प्रकट है। विष्णु-पुराण में शंकर के आदेश से शोणितपुर के निर्माण का उल्लेख नहीं है जबकि प्रस्तुत नाटक में महादेव स्वयं विश्वकर्मा को अपने परम भक्त वाणासुर के लिये शोणितपुर के निर्माण का आदेश देते हैं। शुक्राचार्य इस राजधानी के सिंहासन पर वाणासुर को अभिषिक्त करते हैं। द्वितीय अंतर यह है कि विष्णु पुराण में चित्रलेखा स्वयं अपनी विद्या के बल से अलक्षित रूप में द्वारिका पहुंचती है, किन्तु प्रस्तुत नाटक में यह बताया गया है कि मार्ग में नारद ऋषि उसे तामसी विद्या की शिक्षा देते हुए कहते हैं कि इस से देव-कार्य ही सिद्ध होनेवाला है।

भिन्नताका तृतीय स्थल वह है जहां कृष्ण और वाणासुर में युद्ध होता है। विष्णु पुराण के अनुसार वाणासुर पर सुदर्शन चलाते समय कृष्ण के समक्ष दैत्यों की कुलदेवी 'कोटरी' नग्नावस्था में उपस्थित हो जाती हैं, जिससे कृष्ण आंखें मूंद लेते हैं और उस चक्र से वाणासुर की बाहु कट जाती है। कृष्ण को पुन: चक्र चलाने के लिये तत्पर देखकर शंकर स्वयं उनसे प्रार्थना करते हैं। इन बातों का उल्लेख इस नाटक में नहीं है। इसके अनुसार कृष्ण जब महादेव पर जृंभकास्त्र का प्रयोग करते हैं तो ब्रह्मा आकर उन दोनों की स्तुति करते हुए, उनकी

---

१. विस्तृत विवेचन के लिये देखिये, संक्षिप्त विष्णु पुराण, ५-३३

५८

अभिन्नता बताकर मिलन करवाते हैं । प्रस्तुत नाटक में अपने भक्त को महोदेव महाकाल की पदवी प्रदान करते हुए उसे सपरिवार कैलाश ले जाते हैं, जिसका उल्लेख भी विष्णु पुराण में नहीं है । इन विभिन्नताओं के अतिरिक्त अनिरुद्ध के अकस्मात् अन्तर्ध्यान हो जाने पर उनकी पत्नियों का विलाप, उषा-अनिरुद्ध का प्रेम-विरह प्रसंग, वाणासुर की अपनी रानियों के साथ रस-रंग आदि का समायोजन इस नाटक की अपनी निजी विशेषता है ।

प्रस्तुत उषाहरण नाटक में ईहामृग के कुछ लक्षणों का निर्वाह पाया जाता है । आचार्य अभिनव गुप्त और रामचन्द्र ने लिखा है कि "ईहा चेष्टा मृगस्यैव स्त्रीमात्रार्था त्रेतिहामृग:" अर्थात् इस में मृग के तुल्य अलभ्य कामिनी की इच्छा नायक अथवा प्रतिनायक करता है ।[१] भरतमुनिने इस संबंध में केवल इतना ही कहा है कि इसमें किसी दैवी नारी के लिये युद्ध अनिवार्य है किन्तु आवेश के कारण युद्ध की स्थिति समुपस्थित होने पर भी किसी बहाने उसे टाल ही देना चाहिये । इसी सिद्धान्त को विस्तार के साथ स्पष्ट करते हुए धनंजय ने लिखा है कि ईहामृग की कथावस्तु मिश्रित (प्रख्यात एवं कल्पित) होती है । इस में चार अंक तथा तीन संधियां - गर्भ तथा अवमर्श के अतिरिक्त -- होती हैं । मनुष्य और दिव्य पुरुष में कोई भी नायक अथवा प्रतिनायक हो सकता है । इन दोनों का इतिहास प्रसिद्ध होना आवश्यक है । धीरोद्धत होने के कारण ज्ञानभाव से वह अनुचित कार्य की ओर प्रवृत्त होता है । नायिका के बलात् अपहरण करनेवाले नायक अथवा प्रतिनायक की शृंगारमयी चेष्टाएं और कहीं कहीं शृंगारा भास भी प्रदर्शित किया जाना चाहिये । उत्तेजना और

---

१. डा.ओझा कृत नाट्य समीक्षा, पृ.१४ से उद्धृत ।

विरोध के कारण संग्राम की स्थिति समुपस्थित होने पर भी कवि को चाहिये कि उस स्थिति का निवारण कर दे और प्रतिनायक के वध के समीप होने पर भी उसका वध कभी न कराये ।[१]

आलोच्य उषाहरण भी चार अंकों में विभक्त है । अनुपम सौंदर्यवती उषा के लिये अनिरुद्ध को यत्न शील प्रदर्शित किया गया है । बाणासुर की राजधानी शोणितपुर में निवास तथा दैत्यराज की पुत्री होने के कारण उषा भी अनिरुद्ध के लिये अलभ्य है किन्तु इनके हृदय में उसे प्राप्त करने की प्रबल इच्छा जागृत हो जाती है । प्रतिनायक बाणासुर को माना जा सकता है जो धीरोद्धत भी है और अहंभाव के कारण ज्ञान-विपर्य से वह कृष्ण के साथ भी युद्ध करने के लिये उद्यत हो जाता है । किसी भी प्रकार वह अपनी पुत्री को अनिरुद्ध के हाथ से छुड़ाना चाहता है । कृष्ण अपने पुत्र के बन्दी होने तथा बाणासुर के आह्वान से अत्यन्त उत्तेजनावश सुदर्शन चक्र का प्रहार करना ही चाहते हैं कि दैत्यों की कुलदेवी अथवा ब्रह्मा तथा शिव की स्तुति से युद्ध की स्थिति टल जाती है । शिव-भक्त बाणासुर का वध निकट होने पर भी उसका वध नहीं दिखाया जाता है । इस तरह इसमें कुछ लक्षणों का निर्वाह अवश्य हुआ है, किन्तु जैसा कि पूर्ववर्ती विवेचन में कहा जा चुका है कि नेपाल के मैथिली नाट्य-साहित्य में तीन विभिन्न धाराओं के समन्वय करने का प्रयास किया गया है । प्रस्तुत नाटक भी इसी क्रम में आता है ।

---

१. मिश्रमीहामृगे वृत्तं चतुरङ्कं त्रिसंधिमत् ।
नरदिव्यावनियमान्नायकप्रति नायकौ ।।

--- --- ---

शृंगारा मात्रमप्यस्य किंचित्किंचित्प्रदर्शयेत् ।
यं रम्यं परमानीय युद्धं व्याजान्नि वारयेत् ।।
दशरूपक ३ - ७२-७५

६०

कथा-सार ------ सूत्रधार द्वारा राजवर्णना तथा नटी के देशवर्णना के पश्चात् महादेव, पार्वती, नंदी, भृंगी आदि प्रमथगण प्रवेशोपरान्त अपना अपना परिचय प्रस्तुत करते हैं । अनन्तर महादेव सभी गणों को आदेश देते हैं कि उनके परम भक्त बाणासुर के लिये, विश्वकर्मा को बुलाकर, शोणितपुर का निर्माण कराया जाये । एकान्त देखकर **महादेव** अपनी अर्ध्वांगिनी से कहते हैं कि, हे प्रिये, तुम्हारे अपूर्व सौंदर्य को देखकर मेरा चित्त चंचल हो गया है, अत: तुम अपने उरुओं के मध्य मुझे दबा लो जिससे मेरी काम-पीड़ा शान्त हो जाये । पार्वती भी अपनी सम्मति सूचक मुस्कान से अपने प्रियतम को आमंत्रित करती हैं । इस प्रकार से दोनों रति-रंग एवं हास-परिहास में मग्न हैं कि प्रमथादिगण आकर शोणितपुर के निर्मित हो जाने की सूचना देते हैं, जिसके साथ ही दृश्य-परिवर्तन होता है ।

एक ओर से बाणासुर अपनी रानी सुगन्धिनी और सुवेशा तथा मंत्री कुभांड एवं विभोड के साथ प्रवेश करता है, और दूसरी ओर से बाणासुर की पुत्री उषा अपनी प्रिय सखी चित्रलेखा और सुलेखा के साथ प्रवेश करती है । सभी अपना-अपना परिचय देते हैं । उषा अपने मनोरथ की सिद्धि के लिये पार्वती की आराधना करने की इच्छा प्रकट करती है । बाणासुर भी अपने दोनों मंत्रियों के साथ महादेव की तपस्या के लिये प्रस्थान करता है । उसकी कठिन तपस्या से संतुष्ट होकर महादेव उसे वर मांगने का आदेश देते हैं । वह त्रैलोक्य के राज्य की याचना करता है । महादेव कहते हैं कि तुम्हारी राजधानी के लिये अग्निदुर्ग (शोणितपुर) का विशेष रूप से निर्माण किया गया है । अत: वहीं से तुम शासन का संचालन करो । इस शुभ सम्वाद से सम्पूर्ण राज्य में आनन्दोत्सव मनाया जाता है । शुक्राचार्य स्वयं उसका अभिषेक कर, मंगल कामना करते हुए चले जाते हैं । बाणासुर

६१

अपने मंत्रियों को "अरिष्टात" देने का आदेश देता है और एकान्त पाकर अपनी रानियों से रतिदान की याचना करता है । दोनों रानियां अपने को अबला बताती हुई आत्म समर्पण कर देती हैं । इस प्रकार प्रथम अंक समाप्त होता है ।

द्वितीय अंक बाणासुर के अन्त:पुर से प्रारंभ होता है । जब रति-राग के सरोवर में गोता लगाते लगाते उसका मन संतुष्ट हो जाता है तब उसकी विचार-धारा दूसरी ओर मुड़ती है । उसे अपनी शक्ति का अभिमान आजाता है और अपने मंत्रियों को बुलाकर कहता है कि संग्राम के बिना मेरा बल - पौरूष निरर्थक प्रतीत होने लगा है । अत: कैलास जाकर महादेव से ही इसका उपाय पूछना चाहिये । तदनन्तर अपने मंत्रियों के साथ कैलास पहुंचता है और महादेव को बड़े गर्व से कहता है कि अपने समान किसी बलशाली के अभाव में मेरे सहस्रबाहु और त्रैलोक्य का राज्य भारभूत बन रहे हैं । मेरे मन में सदैव युयुत्सा बनी रहती है, जिसकी तुष्टि नहीं हो पाती । महादेव अपने भक्त-हृदय में अभिमान नहीं रहने देते । अतएव विहंसकर उसे एक मयूर ध्वज प्रदान करते हुए आदेश देते हैं कि इस ध्वज को सिंहद्वार पर रख देना । जिस दिन यह भंग होगा उसी दिन तुम्हें किसी बलशाली योद्धा से संग्राम करना पड़ेगा और तुम्हारे मनोरथ भी पूर्ण होंगे ।[१]

परिवर्तित दृश्य में एक ओर से श्री कृष्ण, रूकिमणी, सत्यभामा, बलभद्र तथा युयुधान का और दूसरी ओर से प्रद्युम्न, रति,

---

१. तुलनीय ------

कच्चिन्ममैषां बाहूनां साफल्य जनको रण: ।
भविष्यति विना युद्धं भाराय मम किं भुजै: ।।
मयूरध्वज भंगस्ते यदा बाण भविष्यति ।
पिशिताशि जनानन्दं प्राप्स्यसेत्वं तदा रणम् ।।

(संक्षिप्त विष्णु पुराण, ५-३३ । २-३)

प्रीति, अनिरूद्ध, विमला, कमला, सुदक्षिणा और सुलक्षणा का प्रवेश होता है । सभी अपना अपना परिचय प्रस्तुत करते हैं । बलभद्र और युयुधान किसी आवश्यक कार्य से समुद्र तट की ओर चले जाते हैं । प्रद्युम्न, अनिरूध्यादि भी अन्यत्र विश्राम करने की इच्छा व्यक्त कर प्रस्थान करते हैं । निर्जन कुंज में मादक वातावरण के कारण कृष्ण का मन चंचल हो जाता है और वे रूक्मिणी तथा सत्यभामा से रतिदान की याचना करते हैं । प्रत्युत्तर में दोनों उद्यत होती हुई कहती हैं कि हमारा शरीर तो तुम्हारे ही अधीन है, अत: यथेच्छ उपभोग करो । तुम्हारे चंचल कर जब कंचुकी-बंध से उलझते हैं तो तत्क्षण ही हमारे निबि-बंध ढीले पड़ जाते हैं । इस शृंगार-भावना के साथ दृश्य समाप्त होता है ।

अगले दृश्य में उषा अपने माता-पिता से आज्ञा लेकर अपनी सखियों के साथ गौरी-सरोवर की शोभा देखने के लिये जाती है । उस सरोवर में गौरी-शंकर को क्रीड़ा-रत देखकर वह उन्हें सभक्ति प्रणाम करती है । इस दृश्य के अवलोकन से उसके हृदय में भी क्रीड़ा की लालसा उत्पन्न हो जाती है । भक्ति और अभिलाषा को जानकर गौरी उसे वर मांगने के लिये कहती हैं । उषा लज्जावनत होकर कहती है कि क्या अन्तर्यामी के समक्ष भी मनोभिलाषा प्रकट करने की आवश्यकता है ? पार्वती संतुष्ट होकर वर देती हुई कहती हैं कि माधव मासके शुक्ल द्वादशी की रात्रि में स्वप्न में साक्षात् संभोगकर जो पुरूष तुम्हारे कौमार्य का अपहरण करेगा वही तुम्हारा पति होगा ।[१] उषा आनन्द विभोर होकर पुन: उन्हें साष्टांग प्रणाम

---

१. माधव मास शुक्लहि द्वादशी रात्रि । समुचित पति होय जेहिदय परिपाति।
स्पनहि जेहिजन भोग कर गेला । सेहि होएत पति एहि वर देला ।।
तुलनीय --- (वि.पु., ५।३२।१४)
वैशाख शुक्ल द्वादश्यां स्वप्ने यो मि भवंतव ।
करिष्यति स ते भर्ता राजपुत्रि भविष्यति ।।

६३

करके राजभवन के लिये प्रस्थान करती है । रात में अचानक उसकी नींद उचट जाती है, उसकी आंखों से आसुओं की धारा प्रवाहित हो जाती है और वह सिसकियां भी लेने लगती है । उसकी सखियां विस्मय-विमूढ़ होकर कारण जानना चाहती हैं । वह विलखती हुई कहती है कि अभी अकस्मात् स्वप्न में किसी पुरूष ने आकर मुझे जगा दिया है । उसके स्पर्श से मेरा शरीर रोमांचित हो उठा है, उसका रूप नयन-द्वार से हृदय में अंकित हो गया है । उसके विरह से ऐसा लगता है कि यह यौवन व्यर्थ नष्ट हो रहा है, अत: तुम उससे मिलन के लिये कुछ उपाय करो ।[१] वह कहती है उस पुरूषने प्रत्यक्ष समागम कर मेरे कौमार्य को खंडित किया है जिस से लोग मुझे सन्देह की दृष्टि से देखेंगे । फिर भी मैं विवश हूं, मेरे प्राण उसे पाने के लिये व्याकुल हो रहे हैं ।

चित्रलेखा उसे वरदान का स्मरण दिलाती है और पश्चात् देव, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर और मनुष्यों के चित्र बनाकर उसके समक्ष रखती है । अनिरूद्ध के चित्र को देख ते ही उषा की आंखे लज्जा के कारण अवनत हो जाती हैं और कपोल अरूण हो जाते हैं । चित्रलेखा सब कुछ समझ लेती है किन्तु द्वारिका से अनिरूद्ध को लेआना कितना

---

१. सपना पाय के दुख भयि सो सपन मति देव ।
रोम रोम कंपित तनु भयि शरणागत प्रभु लेव ।।
विरह वेदन कैसो सहिये तन मन वच ओहि ध्यान ।
जैसी कुमुदिनी शशिध्यायि तैसो ध्याय रहि प्रान ।।
उह मिलन जो होयिय सखि जीवन कृतारथ फल होइ ।
जुवती जौवन विकारत हय उपाय बताय दीजिय कोइ ।।
जग मंह जगत् चन्द्र भए प्रकाश किए गुण विचार ।
देखि पद पंकज प्रणावि के चिन्तय परलोक विचार ।।

दुष्कर है, इससे भी वह अपरिचित नहीं है । फिर भी वह अपनी प्रिय सखी के लिये असंभव को संभव बनाने का संकल्प करती है ।

रंगमंच पर प्रद्युम्न अपनी दोनों प्रेयसियों के साथ प्रवेश करते हैं और प्रेमालाप के पश्चात् रति-दान की याचना करते हैं, जिसके साथ ही द्वितीय अंक समाप्त हो जाता है ।

तीसरे अंक में अनिरूद्ध अपनी प्रियतमाओं के साथ शृंगार मंडप में केलि कर रहे हैं । उनका मन अस्थिर हो जाता है और वे कहते हैं कि हे प्रिये आज लाज का परित्याग कर अपने अधर एवं सुरति रस से मेरे इस काम-तप्त शरीर को सुशीतल करो । प्रियतमाएं भी सदा तत्पर ही रहती हैं, अत: वे कहती हैं कि हम तो तुम्हारे अधीन हैं ही, फिर याचना की क्या आवश्यकता ? हम सब सौत मिलकर तुम्हें मधु दान दे रही हैं, तुम झुक कर पान करो ।

इस केलि-क्रीड़ा के समय ही चित्रलेखा अदृश्य रूप से आती है और उषा के अनन्य दुर्लभ सौंदर्य का शब्द चित्र खींचती एवं उसके विरह का अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन करती हुई, अनिरूद्ध से शोणितपुर चलकर उषा के प्राणों की रक्षा करने की प्रार्थना करती है । अनिरूद्ध भी उषा के सौंदर्य से प्रभावित होकर उसे पाने के लिये व्याकुल हो जाते और चित्रलेखा से अति शीघ्र ही वहां पहुंचाने का निवेदन करते हैं । नारद से प्राप्त तामसी विद्या के प्रभाव से चित्रलेखा आकाश मार्ग से अनिरूद्ध को लेकर प्रस्थान करती है ।

अकस्मात् अपने बीच से अपने प्रियतम को अन्तर्ध्यान हो जाने पर अनिरूद्ध की प्रेयसियां विस्मय-विमूढ़ और वेदना के कारण विलाप

करने लगती हैं । कोलाहल के कारण कृष्ण, बलभद्र, युयुधान आदि सभी वहां उपस्थित होते हैं और समाचार जानकर आश्चर्य करने लग जाते हैं । कृष्ण युयुधान को आदेश देते हैं कि प्रत्येक दिशा-विदिशा में अनिरुद्ध की खोज की समुचित व्यवस्था की जाय, और वे स्वयं अन्य उपायों का अवलम्बन करने के लिये चले जाते हैं ।

चित्रलेखा आकाश मार्ग से अनिरुद्ध को लेकर उषा के शयन-कक्ष में आ जाती है और सुलेखा से गान्धर्व विवाह की सामग्री तैयार करने के लिये कहती है । पुष्प-माला आजाने पर उषा और अनिरुद्ध परस्पर एक दूसरे को पहना देते हैं । तत्पश्चात् दोनों सखियां कार्य का बहाना बनाकर उस कक्ष से चली जाती हैं । शून्य शयन कक्ष को देखकर अधीर हृदय से अनिरुद्ध अपनी प्रियतमा से कह रहे हैं कि तुम्हारे कुटिल-तीखे नयन-बाणों से मेरा हृदय विद्ध हो गया है, तुम्हारे वक्ष:स्थल पर स्थित दो अकृत्रिम नुकीले शिवलिंग को देखकर मेरा मन उनकी पूजा के लिये मचल उठा है । तुम्हारी हृदय-कलिका भी स्पर्श जन्य शून्यता से अभी खिलने में संकुच रही है । अत: हे प्रिये रतिदान के द्वारा इन दोनों का कल्याण अवश्य करो ।

दो प्रेमातुर हृदय का पूर्ण मिलन भी नहीं होने पाया था कि चित्रलेखा एक भयंकर सूचना देने के लिये आजाती है । वह कहती है कि इन दोनों के गुप्तमिलन का रहस्य किसी अनुचरने बाणासुर को बतादिया है, जिस से क्रुद्ध होकर वह अपने मंत्रियों के साथ अनिरुद्ध के प्राण लेने के लिये इधर ही आ रहा है । इस समाचार के कारण उषा का शरीर भय से कांप जाता है । अनिरुद्धआगत भय की प्रतीक्षा में निर्भय खड़े हैं । प्रथम तो दोनों मंत्री युद्ध के लिये आते हैं किन्तु कठिन प्रहार से वे संज्ञाहीन होकर पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं । जब बाणासुर स्वयं विभिन्न

अस्त्र-शस्त्रों की वर्षा से अनिरुद्ध को विचलित नहीं कर सका तो उसे बड़ा क्रोध आया और माया युद्ध का आश्रय लेकर उसने नाग-पाश में अनिरुद्ध को बांध लिया । क्रोधावेश में उसने उनके शिरच्छेदन का आदेश दिया । किन्तु मंत्रियों की सलाह से बन्दी गृह में ही कष्ट और यातना देना उपयुक्त समझकर अनिरुद्ध को बन्दी गृह में डाल दिया गया । इस दुखद समाचार से उषा अपना प्राणोत्सर्ग करने के लिये उद्यत हो जाती है । किन्तु चित्रलेखा उनके परिवार की शक्ति और क्षमता बताकर धैर्य रखने के लिये आग्रह करती है ।

अनिरुद्ध को खोजने में विफल युयुधान, अपनी विवशता और असफलता का निवेदन कृष्ण से कर ही रहे हैं कि तत्क्षण ही नारद, जिन्होंने समस्त घटना क्रम का निरीक्षण किया है, आकर कृष्ण को विस्तार से समाचार सुनाते हैं, जिसे सुनते ही क्रोधावेश में आकर वे गरुड़ का स्मरण करते हैं और कहते हैं कि कल उषा:काल में ही शोणितपुर के लिये प्रस्थान करना है ।

चतुर्थ अंक का प्रारंभ युद्ध के दृश्य से होता है । अग्निदुर्ग के समीप पहुंचने पर उसके चारों ओर से उठनेवाली भयंकर ज्वाला के कारण दुर्ग के भीतर प्रवेश करना कृष्णादि के लिये कठिन हो जाता है, तब गरुड़ अपने सहस्त्र मुख से गंगाजल की वर्षा कर उसे शान्त कर देते हैं और सभी सरलता से अन्दर प्रवेश करते हैं । घोर युद्ध में बाणासुर की सभी सेनाएं नष्ट हो जाती हैं और दोनों मंत्री भी मूर्छित हो जाते हैं । इस संकट से भयभीत होकर बाणासुर अपने इष्ट देव शंकर का स्मरण करता है, जिससे वे अपने भक्त की ओर से युद्ध-भूमि में आ जाते हैं । उनके रुद्रज्वर के प्रयोग से कृष्ण के अतिरिक्त सभी मूर्च्छित हो जाते हैं । कृष्ण इसे अपने विष्णु-ज्वर से शान्त कर

६७

महादेव पर **जृंभकास्त्र** का प्रयोग करते हैं । इन दोनों को परस्पर संग्रामरत देखकर ब्रह्मा वहां पर उपस्थित होते हैं और स्तुति के माध्यम से उन दोनों की अभिन्नता बताते हुए युद्ध-विरत होने की प्रार्थना करते हैं । इस दृश्य को देखकर भी बाणासुर युद्ध के लिये कृष्ण को ललकारता है । **महादेव** उसे समझाते हुए कहते हैं कि उसकी भक्ति से वे परम संतुष्ट हैं, अत: वे **उसे** महाकाल का स्थान देना चाहते हैं । परिवार सहित वह महादेव के साथ कैलास को प्रस्थान करता है । कृष्ण भी अनिरुद्ध और उषा को साथ लेकर द्वारिका पहुंचते हैं । इस शुभ अवसर पर महोत्सव मनाया जाता है । अंत में कृष्ण कहते हैं कि यह संसार तो असार और क्षणिक है, सार पदार्थ केवल परमेश्वरी की वन्दना ही है ।

४. नलीय नाटक --------

प्रस्तुत नाटक १०८ पृष्ठों का है किन्तु इसमें अंक-विभाजन नहीं है । दमयन्ती स्वयंवर से लेकर नलका द्यूत में सर्वस्व हार जाना, कलियुग का उनके शरीर में प्रवेश करना, कर्कोटक नाग का प्रसंग, नलका सारथी स्वरूप, कलियुग के प्रस्थान से नल की पुन: राज्य-प्राप्ति तक की कथा का वर्णन इसमें प्रस्तुत किया गया है । अन्तर्साक्ष्य के आधार पर इस नाटक की रचना तिथि नेपाली संवत् ७९० (१६७० ई.) श्रावण कृष्ण द्वितीया है ।

प्रारंभ -------

।। ओम् नम: श्री नृत्येश्वराय ।। श्री गुरू गणेशाय नम: ।।

मैथिली गीत द्वारा शिव-स्तुति के पश्चात् -----

।। सूत्र प्रवेश: ।। नान्दी श्लोक: ।।

६८

वामांगेतु सदोन्मना स्फुरति मम मुहुर्मुर्द्धिन् वामा तथान्या,
विन्यासार्थं तथैते प्रतिपल कलहं कुर्वतेन: फणीन्द्रा: ।
इत्थं स्वस्याधि शोचन्नमरपरिवृध: पूर्णं सत्प्रेमपूरै:,
पायाद्व: स: प्रसन्नो रूचिर तनु रूचिर्मंगलेशो महेश: ।।

।। पट मंजलि ।। रूपक ।।

जय जय गुणावनि आनन्द देव, हरथु कलेश जत मंगल देव ।
तुज पद सार दे मति अलि मोरा, अभिमत हमरा सेजोव तोरा ।
हरिहर पितामह स्तुतिकर वानी, भगति साधक चित पुरथु भवानी ।
जगत् प्रकाश भन एहि सूत्रधार, चांदशेखर सिंह मोर कंठहार ।

।। पुष्पाञ्जलि श्लोक: ।।

या पार्वती भव तुव: शुभ दान दक्षा, यस्या: कृपामय कटाक्ष परेण शंभु: ।
सानन्दमुज्ज्वल रसोल्लसितैक भावो, विद्या विभाननमतिर्जगदेक बंधु: ।।

सूत्रधार ----- हे प्रिये, त्वरा सत्य आउ ।
नटी ------ हे प्राणनाथ, हमर प्रणाम । की निमित्ते हमरा के बजावल ।
सूत्र. ------ हे प्रिये, महाराज श्री श्री श्री निवास मल्लक देवीक
यात्रोत्सव थिक । तन्निमित्ते महाराज श्री श्री जगत् प्रकाश मल्लक
आज्ञा भेल अछ जे नलचरित नाम नाटक तकर अभिनय करू ।
- - - - - हमे नल राजाक नेपथ्य करब, इहाँ दमयन्तीक नेपथ्य करू गय ।
नटी ------- नाथ, अवश्य ।

अंत -------

।। भैरवी ।। ख ।।

चन्द्रशेखर शिव त्रिभुवन नाथ, तन्हि पदे लग रहु हमे दुहु साथ ।
एहि लाइ सुमरव देव ईशान, परसन होअथु सदाशिव जान ।

६९

भूत गंग तुल वास मनान, वाम दिशि पा[illegible]ति धरगुवान ।
जगत प्रकाश चांदशेखर भाव, धरम करम दिने तोहहि पाव ।
भूगाद् भूमिर शेषाशग्यबहुला पर्यायिनी तिष्ठिता,
राजान: परिपालयन्तु वसुधां सद्धर्म्म कर्म्मान्विता: ।
गोषु क्षीर समृद्धय: प्रतिगृहे सद्धर्मशिला: प्रजा:,
नित्योत्साह भरेण कर्म्मनिरता: सद् ब्राह्मणा: सम्प्रतम् ।।
सर्वे - तथास्तु ।। पंचम ।। चौ ।।
अथिर कलेवर जानु हे कमल पातक जल तूले ।। ध्रु. ।।
- - - - - - - - - दुहु जनक दुहु काय ।।

इति श्री श्री जय जगत् प्रकाश मल्ल विरचितं नलीयं नाटकं सम्पूर्णम् ।। सं ७९० श्रावण वदि २ ।।

कथा-सार ------- महाराज भीम अपने परिवार और पौरजनों के साथ प्रवेश करने के पश्चात् अपना अपना परिचय देते हैं । तदनन्तर महाराज सभी पौरजनों को कार्य-भार सौंपकर विदा कर देते हैं और एकान्त में अपनी रानी से कहते हैं कि तुम्हारे क्षीण कटि एवं उभड़े नितम्ब को देखकर मैं मदन-शर-पीड़ित हो गया हूं, अत: तुम रतिदान द्वारा मेरे प्राणों की रक्षा करो । रानी क्रीड़ा-भाव से आत्म समर्पण कर देती हैं ।

दूसरे दिन महाराज अपनी सभा में विराज रहे हैं । दमयंती भी वहां उपस्थित है । उसी समय सभा में अनूप और सरूप नाम के दो चारण का आगमन होता है । प्रथम तो वे महाराज भीम का गुणगान करते हैं और पश्चात् अपने आश्रयदाता महाराज नल के रूप - सौंदर्य,

गुण ग्राहिता, दान शीलता आदि का विस्तार से वर्णन करते हैं। इस से नल की कीर्ति और चरित्र का प्रभाव सम्पूर्ण सभा पर पड़ता है। वे दोनों चारण उचित पुरस्कार प्राप्त करने के पश्चात् अपने आश्रयदाता की सभा में उपस्थित होने के लिये प्रस्थान करते हैं। महाराज भीम तत्क्षण ही दमयन्ती के स्वयंवर के आयोजन का आदेश देते हैं।

वे दोनों चारण नल की सभा में आकर दमयन्ती के अनन्य सौंदर्य का इस प्रकार से शब्द चित्र प्रस्तुत करते हैं कि नल के हृदय में वह काल्पनिक चित्र प्रेम-पीड़ा उत्पन्न कर देता है, और वे बड़ी व्याकुलता का अनुभव करने लगते हैं। अत: सभा विसर्जित कर दी जाती है। मन बहलाव के लिये वे एक सरोवर के किनारे आते हैं। वहां तैरते हुए एक स्वर्ण-हंस को पकड़कर वे अपनी भावनाओं के आवेश को मोड़ देने के लिये उसके साथ खेलने लगते हैं। स्वच्छन्द विहारी हंसको कष्ट का अनुभव होता है। अत: वह मुक्त होने की याचना करता है। मुक्त हो जाने पर वह कृतज्ञता ज्ञापन करते हुए कहता है कि आपके मनोभिलषित असंभव कार्य को भी पूर्ण करने में मैं स्वयं को भाग्यवान समझूंगा। नल बड़ी आतुरता से कहते हैं कि इस संसार में दमयन्ती-प्राप्ति के अतिरिक्त अन्य वस्तु की मुझे आकांक्षा नहीं है। अतएव यदि उसके साथ आप संयोग करा सकें तो मेरा बड़ा उपकार होगा।

हंस नल से आज्ञा लेकर दमयन्ती के विहार-सरोवर में जाता है। संयोग से दमयन्ती भी उसी समय अपनी सखियों के साथ उद्यान की शोभा देखने के लिये आती है और उस स्वर्ण-हंसको देखकर उसे प्राप्त करने की इच्छा प्रकट करती है। सहेलियों की अन्यमनस्कता के कारण

वह स्वयं सरोवर के किनारे आती है । सुअवसर देखकर हंस अपने आप नल के सौंदर्य तथा अन्य गुणों की प्रशंसा बड़े विस्तार से करने लगता है । इसका प्रभाव दमयन्ती पर पड़ता है और वह कहती है कि उपयुक्त आश्रय के अभाव में मेरी यौवन-लता छितराकर नीरस-सी होती जा रही है । राजकुल की कन्या होने के कारण प्रत्यक्ष कुछ बोलना भी मर्यादा के विरुद्ध है । अत: मैं विवश और निरूपाय होकर भीतर ही भीतर सिसक रही हूं । हे हंस, आप तो ब्रह्मा के रथ वाहक और मन की बातों को जाननेवाले हैं, अत: मैं राजपुत्री होकर अपने मुख से क्या कहूं ।

हंस दमयन्ती की एकनिष्ठा को भली भांति जानने के लिये शंका करते हुए कहता है कि यदि स्वयंवर में आप किसी अन्य रूपवान राजा का वरण करें तो व्यर्थ में मेरी हंसी होगी । इसका प्रतिकार करती हुई दृढ़ता से दमयन्ती कहती है कि हे राज हंस, "जओ सर्वरी कां चन्द्र छाड़ि आन वरक शंका करिअ, पार्वती कां महादेव छाड़ि आन पुरूषाक शंका करिअ, तुओ नल छाड़ि अन्य पुरूषाक शंका करब ।" हंस आश्वस्त होकर नल के पास आता है और सम्पूर्ण घटना का वर्णन यथावत् रूप में करके सुनाता है, जिसे सुनकर नल आनन्दित होकर स्वयंवर के लिये प्रस्थान करते हैं ।

नारद अमरावती पहुंचकर इन्द्रादि दिग्पालों से कहते हैं कि मुझे तो सभी कलह-प्रिय कहा करते हैं, किन्तु आजकल मर्त्यलोक में दमयन्ती के स्वयंवर के कारण किसी भी प्रकार के कलह के अभाव में निरर्थक ही रहना पड़ता है । अतएव कलह के लिये यहां आना पड़ा । तदनन्तर वे दमयन्ती के सौंदर्य का इस आकर्षक ढंग से वर्णन करते हैं

७२

कि उन दिग्पालों के हृदय में उसे प्राप्त करने की कामना उत्पन्न हो जाती है । इसलिये वे स्वयंवर के लिये प्रस्थान करते हैं । मार्ग में, संयोग से, नल भी मिल जाते हैं जिन्हें ये अपना परिचय देकर दमयन्ती के निकट दौत्य कर्म करने के लिये बाध्य कर देते हैं और साथ ही अलक्ष्य रहने की विद्या भी बता देते हैं ।

दमयन्ती अपनी सहेलियों के साथ उपवन में क्रीड़ा कर रही है, इतने में नल वहां उपस्थित होकर दिग्पालों की अभिलाषा बताते हुए दमयन्ती को उनकी ओर प्रेरित करने की चेष्टा करने लगते हैं । प्रतिरोध के स्वर में दमयन्ती कहती है कि मनुष्य और देव में समानता नहीं है, वे तो हमारे पूज्य हैं । उनके अंशों से ही उत्पन्न कोई मनुष्य ही मेरा वर होगा ।[१] दमयन्ती की इस दृढ़ता को देखकर भी जब नल उसे अनेक प्रकार से समझाने का ही प्रयत्न करते हैं तो क्रोध और दुख से वह उसांसें भरती हुई आंसू बहाने लगती है । यह देखकर भ्रमवश नल अपना परिचय प्रकट कर देते हैं । दमयन्ती चकित और आनन्दित होकर क्षमा याचना करती है । नल अपनी असफलता पर कुढ़ते हुए इन्द्रादि दिग्पालों से दमयन्ती की एक निष्ठा और प्रतिज्ञा को यथावत् सुना देते हैं ।

स्वयंवर-मंडप में दमयन्ती हाथ में पुष्पमाला लेकर उपस्थित होती है । विचक्षणा नाम की सखी उसे सभी राजाओं का परिचय दे रही है, किन्तु नल के समान ही अन्य पांच व्यक्तियों को देखकर

---

१. हे दूत, हम मनुष्य, हमरा देवता वर समुचित नहि ----- ते निमित्ते देवता सबहि के हमर नमस्कार । हमर वर नरे, आन नहि ।
(प्रस्तुत नाटक, पृ. ४८)

दमयंती विस्मय में पड़ जाती है और सरस्वती का स्मरण करती है। सरस्वती उसके हृदय में स्फुरणा कर देती हैं जिसके कारण वह छाया से नल को पहचान लेती है और उनके गले में वर-माला डाल देती है। इस घटना से ऋतुपर्णादिराजा उत्तेजित होकर युद्ध के लिये उद्यत हो जाते हैं। महाराज भीम की सहायता से नल उन राजाओं को पराजित करने में सफल होते हैं। इसके पश्चात् नल-दमयन्ती का वैदिक रीति से विवाह सम्पन्न होता है और दोनों "कोबर घर" में प्रवेश करते हैं।

द्वापर और कलि को मार्ग में इन्द्रादि से दमयन्ती के स्वयंवर का सम्पूर्ण वृत्तान्त ज्ञात होता है जिसे वे अपना अपमान समझते हैं। इस अनादर का बदला लेने के लिये वे दोनों दमयन्ती के दाम्पत्य जीवन को यातनाग्रस्त कर देने की योजना बनाते हैं और नल के अपनी नव वधू के साथ राजधानी वापस आते समय वे उन दोनों का पीछा करते हुए सुअवसर की घात में लगे रहते हैं।

राजधानी में अपने महाराज और महारानी के स्वागत में भव्य उत्सव का आयोजन किया जाता है। उत्सव के पश्चात् रात में जब युगल प्रेमी मिलते हैं तो रात्रि की निस्तब्धता और हृदय की आतुरता के कारण नल का मन चंचल हो जाता है और वे अपनी प्रियतमा से उसका सौंदर्य-वर्णन करते हुए रतिदान की याचना करते हैं।[१] दमयन्ती भी तो

---

१. मधुहित रिपुसुत बाहन सौर, सेहे सुनि अति रति उपजल मोर।
भुवन दे पुरल सुरपथ आज, गजगामिनि करू सुरतक साज।
तेजह नितम्बिनि एखने आंचल, देह दरशन हृदय कनकांचल।
किछु हंसि हमर अधर कर पान, तओ होएत हमर जीव तरान।
परकाश नृप रस उज्ज्वल भान, एकर भाव गौरीपति जान।
(प्रस्तुत नाटक, पृ. ५०)

चिरकाल से पिपासित और काम-शर-पीड़िता है । अतएव आलिंगन पाश में आबद्ध होकर वह कहती है कि मेरा हृदय तुम्हारे रूप से अभिभूत है और काम-वारि से रोमांचित शरीर तुम्हारे स्पर्श के लिये लालायित है । तुम तो सभी कलाओं में चतुर हो, अत: मेरी वय को ध्यान में रखते हुए उचित मधुपान करो ।

उधर ऋतुपर्ण राजा अभी तक स्वयंवर से वापस नहीं आया है । ग्रीष्म ऋतु के कारण उसकी रानी प्रभावती और विभावती अपने प्रियतम के विरह की ज्वाला से तड़प रही हैं । वे दोनों आलाप-संलाप करती हुई कहती हैं कि इस ग्रीष्म ऋतु में प्राकृतिक ज्वाला और विरह ज्वाला से हमारा शरीर मदन के कारण जल रहा है । हमारी तरूणता व्यर्थ हो रही है । जिसे इस प्रकार का निष्ठुर प्रियतम प्राप्त होता है उसे इसी तरह विरह - कष्ट सहना पड़ता है ।[१] ठीक इसी समय प्रियतम के आगमन से उनकी विरह-ज्वाला शान्त हो जाती है ।

एक दिन दमयन्ती अपनी सखी से कहती है कि मेरे प्रसव-समय की निकटता की सूचना महाराज को दे दी जाय । इस शुभ समाचार से प्रफुल्लित-मन महाराज अविलम्ब प्रसूतिका, ब्राह्मण, गायन, गणक आदि को बुलाने का आदेश देते हैं । यथा समय पुत्र-रत्न का जन्म होता है । वह बालक चक्रवर्ती के सभी लक्षणों से युक्त है, किन्तु गणक के अनुसार आदित्य से नवें भाव में शनि हैं,

---

१. प्रभा.----- हे विभावती, एहन ग्रीष्म ऋतुक समय पहु विनु रहि नहि होइ छए ।

विभा.---- हे प्रभावती, निष्ठुर पुरूष जकरा होअ से एहने दुख पाओव ।

(पृ.५१)

चन्द्र से चौथे भाव में मंगल हैं, अत: इस मन्द योग के कारण माता-पिता को कष्ट होता है ।[१] इसके पश्चात् सभी ब्राह्मणादि मनोवांछित पुरस्कार प्राप्तकर चले जाते हैं ।

कलियुग प्रवेशकर द्वापर से कहता है कि महाराज नलने पाद प्रक्षालन के व्यतिरेक से सायं संध्या की उपासना की है । उनकी इस अशुद्धि के कारण मैं उनके शरीर में प्रवेश करता हूं, तुम अन्तर्ध्यान होकर उन्हें बाह्य कष्ट दिया करो ।[२] ये दोनों नलको विभिन्न प्रकार से यातनाएं देने के लिये द्यूत-क्रीड़ार्थ पुष्कर राज को आमंत्रित करते हैं । इस द्यूत-क्रीड़ा में, कलियुग के प्रभाव के कारण, राजा नल राज्य के साथ ही अपने शरीर तक के अलंकरण को हार जाते हैं और उन्हें अपने ही राज्य से निष्कासित भी कर दिया जाता है । अतएव अपने पुत्र को मंत्री के साथ महाराज भीम के निकट भेजकर, वे दमयन्ती के साथ जंगल का मार्ग पकड़ते हैं । महाराज भीम दौहित्र को देखकर जितना आनन्दित होते हैं, उस से अधिक वे उन दोनों के समाचार से दुखी होते हैं । अत: अविलम्ब ही वे एक ब्राह्मण को उनकी खोज का आदेश देते हैं ।

इस दीनावस्था में नल को अपनी पत्नी के साथ रहने में लज्जा और ग्लानि का अनुभव हो रहा है । अत: एक दिन निद्राभिभूत दमयन्ती को उसके भाग्य पर छोड़कर जंगल को चले जाते हैं । जगने पर जब दमयन्ती अपने पति को नहीं देखती तो निस्सहाय और व्याकुल

---

१. आदित्य राजो नवम भाव शनैश्वर छथि, चन्द्र सं चारिम भाव मंगल छथि । तैं माय-बाप का क्लेश होअब । एतेक मन्द योग अछ । (पृ. ५३)

२. हे द्वापर, नल राजाजी पाद प्रक्षालन व्यतिरेक सायं संध्याक उपासना कएल । एहि छिद्र हमें हिनका शरीर प्रवेश करब । तो हैं अन्तर्ध्यान भए रह । (पृ. ५७)

होकर करूण क्रन्दन करने लगती है । एक व्याधा उसकी इस स्थिति से अनुचित लाभ उठाना चाहता है, किन्तु सतीकी क्रोधाग्नि में वह भस्म हो जाता है । इस अवसर पर नारदादि सप्तर्षि आकर सांत्वना देते हुए कहते हैं कि अभी एक ब्राह्मण यहां आयेगा जो तुम्हें नगर तक पहुंचाकर तुम्हारे सतीत्व की रक्षा करेगा । इस प्रकार आश्वस्त होकर उस ब्राह्मण के साथ नगर में पहुंचती है । उस नगर की रानी की दृष्टि दमयन्ती पर पड़ती है और उसकी कुलीनता से प्रभावित होकर वह अपनी पुत्री की सहेली के रूप में अपने यहां आश्रय देती हैं । दमयन्ती इसी शर्त पर रहना स्वीकार करती है कि वह कभी न तो उच्छिष्ट खायेगी और न पर-पुरूष-संभाषण ही करेगी ।

दमयन्ती की खोज करता हुआ वह ब्राह्मण दैवयोग से इसी नगर में आ पहुंचता है । एक दिन जब अपनी सखियों के साथ दमयन्ती किसी वाटिका में विहार कर रही थी, तो वह ब्राह्मण उसे पहचान कर अपनी राजधानी वापस चलने की प्रार्थना करता है । इन दोनों को निकटता से संभाषण करते देखकर उत्सुकता वश रानी भी वहां उपस्थित होती हैं और समाचार ज्ञात कर उसे इस पर एकाएक विश्वास नहीं होता । किन्तु दमयन्ती के माथे पर तिल का चिन्ह देखकर जब उसे सत्यता का ज्ञान हो जाता है तब वह कुशल की समाप्ति तक दमयन्ती को यहीं रहने का आग्रह करती है । पर दमयन्ती के हठ पर हारकर वह उसे अलंकरणों से सजाकर भेजने को तैयार होती है । पति-वियोगिनी और कुलीना दमयन्ती अलंकरणों को स्पर्श किये बिना ही अपनी राजधानी वापस आ जाती है । यहां भी उसका मन सदैव उदास और खिन्न रहा करता है । अत: महाराज भीम

पुन: उसी ब्राह्मण को नल की खोज में भेजते हैं । जब वह ब्राह्मण जाने लगता है तो दमयन्ती उससे निवेदन करती है कि वह सभी दरबारों में जाकर एक प्रश्न पूछे कि आधे वस्त्र पर ही अपनी पत्नी को गहन वन में त्याग देना क्या राजधर्म है ? जो व्यक्ति इसका उत्तर देगा वही मेरा पति नल होगा ।

उधर नल जंगलों में भटक रहे हैं । अकस्मात् उनके कानों में करूण क्रन्दन का स्वर आता है । वे घटना स्थल पर पहुंचकर दावानल से कर्कोटक नाग की रक्षा करते हैं । वह नाग प्रत्युपकार में उन्हें डंस लेता है जिससे उनका रूप विकृत हो जाता है । कर्कोटक बताता है कि कलि के कारण उन्हें इन विपत्तियों का सामना करना पड़ रहा है । इस विकृत रूप के कारण उन्हें कोई पहचान नहीं पायेगा जिससे वे आसानी से कुसमय व्यतीत कर सकते हैं । नाग उन्हें, उपयुक्त अवसर आने पर रूप परिवर्तन के लिये, एक वस्त्र भी देता है और कहता है कि राजा ऋतुपर्ण के यहां वे अपना कुसमय बितायें । तदनुसार, अश्व विद्या में निपुण, राजा नल ऋतुपर्ण के दरबार में 'बाहुक' के नाम से अश्वशाला में नियुक्त हो जाते हैं । वह ब्राह्मण दमयन्ती के प्रश्न को इस दरबार में भी दुहराता है । राजा नल उत्तर में कहते हैं कि अपने पति की निन्दा करवाना क्या पतिव्रता स्त्री का धर्म है ? इस उत्तर को सुनकर वह ब्राह्मण वापस आजाता है और यथावत् रूप में दमयन्ती को सुना देता है ।

इस घटना से उसे कुछ आशा बंध जाती है । वह एक योजना बनाकर अपनी मां से कहती है कि मेरे स्वामी अश्व विद्या में निपुण हैं । अत: ऋतुपर्ण राजा को स्वयंवर के छल से यहां बुलाओ ।

यदि वे वहां होंगे तो एक दिन में ही राजा को यहां ले आयेंगे। इस योजना को अभी गुप्त ही रखना।[१] एक ब्राह्मण संवाद लेकर ऋतुपर्ण के दरबार में जाता है और कहता है कि राजा नल का कुछ भी समाचार नहीं मिलने से कल ही दमयन्ती के पुनर्स्वयंवर का आयोजन किया गया है जिसमें आप विशेष रूप से आमंत्रित हैं। राजा प्रमुदित मन बाहुक को शीघ्रगामी अश्वों का रथ सजाने का आदेश देता है। इस समाचार से बाहुक (नल) के मन में द्वन्द्व चलने लगता है। वह सोचता है कि यह बड़े आश्चर्य की बात है कि दमयन्ती का हृदय इस प्रकार पतित हो गया है, किंवा, हो सकता है कि मुझे बुलाने के लिये ही उसने इस उपाय का अवलम्बन किया है। अत: सारथी के रूप में मुझे अवश्य ही वहां जाना चाहिये।[२] मार्ग में नल अश्व विद्या सिखाने के बदले ऋतुपर्ण से अक्षविद्या प्राप्त कर लेते हैं जिसके प्रभाव से वे पुष्कर राज को द्यूत में पराजित कर पुन: अपने राज्य को वापस लेने में सफल होते हैं। इसी बीच एक वृक्ष की छाया में विश्राम करते समय उनके शरीर से कलियुग का प्रभाव नष्ट हो जाता है। जब ये दोनों महाराज भीम की राजधानी पहुंचते हैं तो किसी भी प्रकार का आयोजन न देखकर

---

१. हमर स्वामी अश्व हृदय जानथि, ते निमित्ते ऋतुपर्ण राजा कें स्वयंवर छले त्वराअ बजबीअनु। जओ हमर स्वामी ओतय रहताह तओ एतय एक दिवसे पहुंचताह। अहीं स्वयंवरक कहिनी हमरा लापक आगू जनि कहिअ। दूत ब्राह्मण मात्र के कहब। (पृ. ९०)

२. परम आश्चर्य लगै अछा दमयन्तीक एहन चित्त भेल अछ किंवा हमे बजेबाक निमित्ते उपाय कएल से नहि जनै छिअ। एतम अवश्य हमरा जाय बुझिअ। (पृ. ९२)

उन्हें शंका होने लगती है । राजभवन में महाराज भीम जब उन्हें अकस्मात् आनेका कारण पूछते हैं तो ऋतुपर्ण अप्रतिम होकर कहता है कि वैसे ही आपके दर्शनार्थ आ गया । अत: अतिथि शाला में उनके निवासादि की राजोचित व्यवस्था कर दी जाती है ।

इन दोनों के आजाने पर दमयन्ती अपनी सखी सुकेशिनी से कहती है कि ऋतुपर्ण के सारथी अवश्य ही मेरे स्वामी हैं, अन्यथा एक दिन में ही यहां पहुंचना दूसरों के लिये नितान्त असंभव है । किन्तु उनके रूप का वैरूप्य देखकर शंका भी हो रही है । अत: इसका परीक्षण कर लेना ही उचित है । तदनन्तर वह अपनी सखी को जलावन, रिक्त घट, चावल , मांस आदि पाक-सामग्री उनको दे आने के लिये कहती है, किन्तु आग नहीं देती तथा कुछ पके हुए मांस भी ले आने के लिये कहती है ।[१] पाक के पश्चात् दमयन्ती का सन्देह दूर हो जाता है और वह अपने स्वामी को बुलाकर प्रार्थना करती हुई उस विकृत रूप को परिवर्तित करने के लिये सानुरोध निवेदन करती है । नल उस वस्त्र के प्रभाव से अपने पूर्व रूप में तो आ जाते हैं, किन्तु दमयन्ती के चरित्र पर शंका करते हुए उसे अपनाने से अस्वीकार कर देते हैं । तत्क्षण ही आकाशवाणी होती है कि दमयन्ती के चरित्र को साक्षी वायु, इन्द्रादि देव हैं, वह सती और निर्मल हृदय की है । अत: तुम्हें उसे अवश्य ही ग्रहण करना चाहिये ।

---

१. दम.---- हे सुकेशिनी, ई ऋतुपर्ण राजा थिकथि । तन्हिक सारथी हमर स्वामी होमय पारथि । अन्यथा एके दिने आन के पहुंचावए पारिते । परन्तु रूपक अत्यन्त वैरूप्य देखै छिए । ते निमित्ते नीक कए परीक्षा करए जाउ ।
सुके.---- हे राजपुत्री, कओन भतियाओ परीक्षा करब से कहू ।
दम.---- पाकक सामग्री, जारन, शून्य घैल, चाउर, मांस ई सबे लए जाउ । आगि जनु दिअओ । जे मांस पाक करथि ताहि सओ किछु मांगि आनब । (पृ.९६)

८०

इस आकाशवाणी के पश्चात् नल का हृदय संदेह-रहित और स्वच्छ हो जाता है तथा वे दमयन्ती को पूर्ववत् अंगीकार कर लेते हैं । दीर्घकाल के पश्चात् पुनर्मिलन के सुख से वे दम्पत्ति आनन्द विभोर हो जाते हैं । रात्रि की सुखद बेला में शून्य शयन कक्ष और पिपासित हृदय के कारण नल बड़ी अधीरता से अपनी प्रियतमा के सौंदर्य का वर्णन करते हुए आलिंगन और रतिदान की याचना करते हैं ।[१] काम-दग्धा दमयन्ती अपने प्रियतम के गाढ़ालिंगन में आबद्ध हो जाती है और सुरतावसान के पश्चात् प्रणय-उपालंभ के स्वर में कहती है कि तुम बड़े ही नटखट हो, मेरी वेणी बिखर गयी है, सिन्दूर बिन्दु से कपोल और भी अधिक अरूण हो उठे हैं और सम्पूर्ण शरीर का अलस भाव दूर हो गया है । तुम्हारी निर्दयता के कारण कुछ अंगों में अभी भी पीड़ा का अनुभव हो रहा है ।

इस प्रकार रति-राग में कुछ दिन व्यतीत होने पर महाराज नल अपने श्वशुर से पर्याप्त धन प्राप्त कर पुष्कर राज से द्यूत खेलने जाते हैं जिसमें पुष्करराज अपनी निजी कोष भी हार जाता है । उनकी विवशता देखकर नल कहते हैं कि यद्यपि तुम सर्वस्व हार गये हो, तथापि मैं केवल अपना राज्य ही लूगां, तुम अपने राज्य का भार संभालो । राज्य की पुनर्प्राप्ति के पश्चात् विदर्भ देश से सभी

---

१. तुअ मुख गारि गेल चांदक गार, अछ उर उपर उत्तमहार ।
अबला हम सभो होअ जनु वामा, नयन तरंग तुअ कि कहब रामा ।
किसलय जानि हमें परसल पानि, आलिंगन देह मोर विनती मानि ।
उरू युग पर कत कसकर भाव, ते मोर लोचन अतिसुख पाव ।
परकाश महीपति एहोरस भान, एब विधि रति दमयंती जान ।।
(प्रस्तुत नाटक, पृ.१००)

पधारते हैं और बड़े धूम धाम से उत्सव मनाते हैं । अंत में नल सभी से क्षमा याचना करते हुए ईश्वरी की प्रार्थना में जन्म व्यतीत करने की इच्छा प्रकट करते हैं ।

समीक्षा ----- प्रस्तुत नाटक में नल-दमयन्ती विषयक वृत्तान्त के उतने ही प्रसंग को संक्षेप किन्तु सरस रीति से प्रस्तुत किया गया है जो जन-कंठों में भी प्रचलित है । मिथिलांचल में उपरि विवेचित प्रसंग "सपता-विपताक कथा" के रूप में महिलाओं में अत्यन्त ही प्रचलित है जिस पर धार्मिक भावना का आवरण चढ़ा दिया गया है । इसका कथोपकथन गठित और निखरा हुआ है । भाषा का रूप कथोपकथन में गद्य के प्रयोग से अधिक प्रांजल हो गया है । कथा में स्वाभाविकता और नाटकीयता लाने के लिये कुछ लघु प्रसंगों की कल्पना भी कर ली गयी है जो विवेचन से प्रकट है ।

इस नाटक के एक सौ आठ पृष्ठों में अंक-विभाजन का अभाव एक आश्चर्य और नवीन वस्तु प्रतीत होता है । यहां के नाट्य-साहित्य में इस प्राकार का यह प्रथम नाटक है । इसमें पात्रों के प्रवेशादि क्रम तथा इतिवृत्त के विकास से यह स्पष्टत: लक्षित होता है कि इसमें, अन्य नाटकों की भांति, अंक-विभाजन अवश्य होना चाहिये ; जो संभवत: लिपिकार के प्रमाद से भ्रमवश उल्लिखित नहीं हो सका हो ।

५. पारिजात हरण --------

जगत् प्रकाश मल्ल कृत प्रस्तुत नाटक ४५ पत्र और तीन अंकों में विभक्त है । प्रारंभ से अन्त तक इसकी भाषा में ब्रज तथा अवधी का मिश्रण है । यत्र तत्र दो चार वाक्य मैथिली के भी व्यवहृत हुए हैं ।

८२

इसमें रचना तिथि का उल्लेख नहीं किया गया है । प्रारंभ और अंत इस प्रकार हैं --------

प्रारंभ ------ ।। ओम् नम: नृत्यनाथाभ्यां ।। नांदी ।।
रामकरी ।। चो ।।

प्रथम तो चन्द्रशेखर नाचय हो ।। ध्रु. ।। आदि, मैथिली गीत द्वारा शिव-वन्दना के पश्चात् सूत्रधार प्रवेश करता है ।

।। सूत्र प्रवेश ।।

विघ्नारण्यदवाग्नि भास्वरशिखा यच्चिन्तया सर्वतो,
जायन्ते सततं सतामभिमता: सम्यग् यशोराशय: ।
हेरम्बस्य करम्बिता: सुरपतेश्चूडामणीनां त्विषा,
बंधूकाधिकलोवहि: पदरुच: कुर्वन्तु ते मंगलम् ।।

- - - - - - अलमति विस्तरेण । समस्त नेपालि को अधिपति महाराजाधिराज श्री श्री श्री निवाग्मल्ल को परमेश्वरी को यात्रा महोत्सव में अनेक देश सौं आए हो । मेरी कछु विनती सुनिए । पहिले कबनो देश सौं एक नटुवा तिन्हहु विभत्स रसपूर्ण नाच नाचि कहु सब लोक सताय्यो हो । औरे लोग सब रिझवने को परम विदग्ध भरत कुलावतैं सवानी रसला राजय जिउ को शिष्य ललित चरित नाम मथुरा पुर सौं आयो हो । तुम सबहु कृपा करणो चाहिय ।

।। नेपथ्ये नट ।। तुम जोरू को वचन सौं आये हो । कहा रिझा हिगो । ।। सूत्र आकाशस फेने ।। कहा कहत हो, तुम जोरू को वचन सौं आये हो । कहा रिझाहिगो । स: कहत हब परमेश्वरी की कृपा सौं कहा न होय । प्यारी को बस होय लोग कहा नहीं

करत हय । - - - - - - हे मारिष, ग्यासद् रिफायवे को अति उत्तम ग्रंथ पायो । मनु वंश कृतावतार महाराजाधिराज श्री श्री नरेश मल्ल हृदये नंदन महाकवि श्री श्री जय जगत प्रकाश मल्ल देव को कियो ग्रंथ पारिजात हरण नाटक हय । ता नाच सौं ग्यासद रिफैहौं ।

त्रैलोक्य पावन मुरारि गुणान् स्पृशन्ति,
वद्धादराणि कवि विज्ञगणाग्रणीभिः ।
पीयूष सार सदृशानि तरां जयन्ति,
श्री मत् प्रकाश नरदेव कवेर्वचांसि ।।

हे मारिष, ऐसो ग्रंथ श्री श्री जगत प्रकाश कियो । जाको नाम सुनत सकल पाप को नाश होय ।

अंत --------- ।। भैरवी ।।

अम्बिके तव वदन शशधर नयन कमल सुसार,
कर्ण कुंडल कपोल दर्पण उर सित वसन भार ।
तं देहि मम कंठ हारं ।। ध्रु. ।।
वलय सिंजित अनेक धर देवि खर खप्पर चापं,
डमरू त्रिशूल सशमंकुश वज्र मुंच मम पापं ।।
अभय कर युग गदा चक्रधर खट्वांग जननी पाणि,
शूल घंटा पाशधर देवि देव दानव मानि ।
कथय परकाश नृपति पदयुग वाहन बरद ओ सिंह,
देहि मस्कं किन्नर देवि चंद्रशेखर सिंह ।
वर्षन्तु काले जलदाः सशस्याधरा प्रजा सन्तु निरीतयः ।
धर्मेण राजा पृथिवीं प्रशास्तु सुनिर्भयाः भूमिसुराःभवन्तु ।।

८४

श्री श्री जय जगत् प्रकाश मल्ल भूपस्य सप्तांग राज्य वृद्धिरस्तु ।

।। झूमरि ।। सारंग ।। पंचम ।। चौ ।।

अथिर कलेवर जानु हे, कमल पातक जल तूले ----- आदि ।

इति श्री जय जगत् प्रकाश मल्लकृतं पारिजात हरण नाम नाटकं तृतीयांक समाप्तम् ।। शुभम् ।।

कथा-सार ----- श्री कृष्ण अपनी प्रियतमा रूकिमणी के साथ आलाप-संलाप कर रहे हैं । प्रद्युम्नादि आकर उन्हें प्रणाम करते हैं । इसी समय नारद का आगमन होता है और वे एक पारिजात-पुष्प रूकिमणि को देते हुए कहते हैं कि यह पुष्प आपके संसर्ग से अत्यधिक शोभा को प्राप्त करेगा और साथ ही आपका भी मनोरथ सिद्ध होगा । आज मुझे ज्ञात हुआ है कि कृष्ण का आपके प्रति इतना अधिक प्रेम है, इससे आपकी अन्य सौतोंको अवश्य ही ईर्ष्या होगी । इतना कहने के पश्चात् वे प्रस्थान करते हैं और मार्ग में सोचते हैं कि मेरा लक्ष्य सिद्ध हुआ, इसी पुष्प के कारण रूकिमणी और सत्यभामा में कलह होगा ।

यह वृत्तान्त, वहीं पर बैठी हुई सत्यभामा की सखी उनसे जाकर बता देती है, जिससे उनका मन क्षोभ से भर जाता है और वे तत्क्षण ही कोप भवन में चली जाती हैं । कृष्ण उन्हें मनाने के लाख प्रयत्न करते हैं किन्तु वे चुप्पी साधकर बैठ गयी हैं । अंत में कृष्ण उन्हें वचन देते हैं कि उनके लिये स्वर्ग से वे पारिजात वृक्ष ही ले आयेंगे । वे उसी समय नारद का स्मरण करते और उनके आने पर कहते हैं कि वे इन्द्र से निवेदन करें कि उनके लिये मैं और जयन्त

८५

समान हैं । अत: कुछ दिनों के लिये पारिजात वृक्ष प्रदान कर उपकृत करें अन्यथा समूल ही ले आने की स्थिति आजायेगी । सत्यभामा को इस कथन से विश्वास हो जाता है और वे पूर्ववत् व्यवहार करने लगती हैं ।

नारद अमरावती पहुंचकर इन्द्र से कृष्ण का अनुरोध निवेदन करते हुए कहते हैं कि उनका कहना है कि यदि आप इच्छा से पारिजात वृक्ष नहीं देगें तो उन्हें बाध्य होकर बलपूर्वक ले जाना पड़ेगा । प्रत्युत्तर में इन्द्र नम्रता एवं निर्भीकता के साथ कहते हैं कि कृष्ण मेरे अनुज हैं और यहां की सभी वस्तु उनकी ही है, किन्तु भय दिखाकर वे कुछ भी नहीं ले सकते । अत: वे अपनी शक्ति का प्रयोग कर सकते हैं । नारद के प्रस्थान के उपरान्त वे नन्दन वन के रक्षकों को पूर्ण सावधानी रखने का आदेश देकर गुरू बृहस्पति के निकट जाते हैं । देवगुरू उन्हें साथ लेकर कश्यप और अदिति के समीप जाते हैं और उनसे इस युद्ध को विरमित करने की प्रार्थना करते हैं ।

नारद से समाचार प्राप्तकर श्री कृष्ण, बलभद्र, प्रद्युम्न, और सात्यकी अमरावती के लिये प्रस्थान करते हैं । कृष्ण पर पारिजात वृक्ष को समूल उखाड़कर गरूड़पर रख लेते हैं । इन्द्र को जब सूचना मिलती है तो वे कृष्ण के समीप आकर कहते हैं कि पत्नी की मान-रक्षा के लिये अग्रज का अपमान करना किसी भी स्थिति में धर्म नहीं है । प्रत्युत्तर में कृष्ण कहते हैं कि मैं अधर्म नहीं कर रहा, इस अमरावती में मेरा भी भाग है । अत: आप शची के

कहने से ही मुझे अपने अधिकार से वंचित कर रहे हैं । इसीप्रकार प्रद्युम्न और जयन्त में भी वाग् युद्ध होता है ।[१] इसी वाग् युद्ध के मध्य बृहस्पति, कश्यप और अदिति आकर उन्हें समझाते हुए युद्ध से विरत करते हैं । अदिति स्वयं उस वृक्ष को लेकर कृष्ण को दे देती हैं, जिसे लेकर वे द्वारिका के लिये प्रस्थान करते हैं ।

सत्यभामा पारिजात वृक्ष को प्राप्तकर अत्यन्त आनन्द के कारण उगमते हुए सविधि उसकी पूजा करती हैं । पूजोपरान्त नारद इस यज्ञ के निमित्त, सत्यभामा से उनकी सब से प्रियवस्तु की दक्षिणा देने के लिये कहते हैं । सत्यभामा लज्जावनत होकर पति सहित उस वृक्ष को भी दक्षिणा में देती हैं । दान लेने के पश्चात् नारद पुन: दोनों वस्तु सत्यभामा को ही सौंप देते हैं और कृष्ण से सायुज्य मुक्ति के लिये प्रार्थना करते हैं । इस पूजा-विधि के पश्चात् अमरावती से इन्द्र को बुलाकर कृष्ण उन्हें पारिजात वृक्ष वापस दे देते हैं । अंत में वे कहते हैं कि "हे लोगो संसार मिथ्या हय, परमेश्वरी को भजन करो ।"

समीक्षा ----- प्रस्तुत पारिजात हरण में हरिवंश पुराण और उमापति कृत पारिजात हरण दोनों से ही प्रेरणा ग्रहण की गयी

---

१. इन्द्र ----- हे कृष्ण, स्त्री के वचन सौं बड़े भैया मारि के पारिजात लय जैहौं, एह कौन धर्म ।
कृष्ण ---- हे दाउ, हम अधर्म नहि करत हय, तुम अधर्म करत हो । एह तो हम फेरि आनि दैहैं । जो कछु वस्तु अमरावती में हय सो आधा हमरो आधा तुम्हारो । तुम सची वचन सौं नहि देत हो ।
जयन्त ---- हे प्रद्युम्न, बहुत साहस किये हय । मानुष होय अमरावती आये हो । पानी कहुं ऊंच नहि चलत हय, नीच को धरत हय ।
प्रद्युम्न ---- हे जयन्त, इन्द्र कहा, जो बुला आवय तो पारिजात न राखि सकय । (प्रस्तुत नाटक, पृ.३५)

है । पारिजात पुष्प रूकिमणी को देने की घटना, हरिवंश के अनुसार, सुमुखी नाम की दासी सत्यभामा से बताती है ; किन्तु उमापति के पारिजात हरण में सत्यभामा स्वयं लता की ओट से सारी घटना देखती है । हरिवंश में नारद कहते हैं कि आज सत्यभामा समझेंगी कि किसका सौभाग्य अधिक है ।[१] स्पष्टत: इस स्थल पर इस पारिजात हरण में हरिवंश का अनुकरण किया गया है, क्योंकि इसमें भी उक्त घटना की सूचना एक सखी द्वारा ही सत्यभामा को प्राप्त होती है और साथ ही नारद भी रूकिमणी से यही कहते हैं कि "आज सत्यभामाजी जानेंगी तुम्हारी बड़ाई ।" हरिवंश पुराण के समान ही प्रस्तुत नाटक में भी कृष्ण स्वयं सत्यभामा से पारिजात तरू ले आने की बात कहते हैं जिससे संतुष्ट होकर वे मान का परित्याग करती हैं ।[२] ब्रह्मा, कश्यप और अदिति की मध्यस्थता के प्रसंग को हरिवंश के आधार पर प्रस्तुत नाटक में समाविष्ट किया गया है । उमापति कृत पारिजात हरण के अनुकरण पर प्रस्तुत नाटक में, नारद के द्वारा विजय का समाचार प्राप्तकर सत्यभामा का उन्हें माला अर्पित करना, संकल्प के तद्वत, वाक्य का प्रयोग, नारद की उचित व्यवस्था के पश्चात् कृष्ण का सत्यभामा को ढूंढते हुए कोपभवन में जाना[३] आदि प्रसंगों का समावेश किया गया है ।

---

१. अद्य सत्राजिती देवी ज्ञास्यते वरवर्णिनी ।
सौभाग्याढ्यं सदा वेत्तिऽऽत्मानं सुभगंगती ।।
(हरिवंश, विष्णु पर्व - ६५।३६)

२. पारिजातक पुष्पाणि यदीच्छसि सतिकोपने ।
तदा दातास्मि सुश्रोणि सत्यमेतद् ब्रवीमि तम् ।।
(वही ६७।३१)

३. दृष्टव्य, बजरंग वर्मा द्वारा सम्पादित नव पारिजात मंगल के उत्तरार्ध में नाटक का मूल ।

८८

उक्त दोनों ग्रंथों के अनुकरण के अतिरिक्त प्रस्तुत नाटक में लेखक की किंचित् मात्र भी मौलिकता लक्षित नहीं होती, इस अनुकरण में भी लेखक पूर्णरूप से असफल रहा है । सखियों के द्वारा बताये जाने पर सत्यभामा का कोप-मानु, वृक्ष-प्राप्ति की उत्सुकता आदि प्रसंगों में जो स्वाभाविकता एवं मनोवैज्ञानिकता उक्त दोनों ग्रंथों में है वह इसमें नहीं है । अपनी मौलिकता के आधार उमापति ने अपने नाटक में जिस रूप में नाटकीयता का समावेश किया है, उसका प्रस्तुत नाटक में नितान्त अभाव है ।

६. प्रभावती हरण --------

प्रस्तुत नाटक ४४ पत्र एवं तीन अंकों में विभक्त है । अन्तर्साक्ष्य के आधार पर इसकी रचना तिथि नेपाली सं. ७७६ (१६५६ ई.) अषाढ़ शुक्ल चतुर्थी शुक्र है ।

प्रारंभ ------ ।। ओम् नम: श्री नाटेश्वराय ।। नान्दी गीतं ।।

राज-विजय ।। चो ।।

प्रथमहि सुमरऊँ गुरू गणेश, देषु अभयवर हरषु कलेश ।
कर त्रिशूल डमरू मणिहार, प्रेम धरिअ शिव अरधंग दार ।
नंदी भृंगी सृंगी तूरित विहार, ओढ़ि ईसर सुन्दर बघ छाल ।
चांद तिलक जटा निरमल गंग, त्रिभुवन ठाकुर भूषाण भुजंग ।
तोहहि सोहावन मोर मन भाव, जगत् प्रकाश भूप कौतुके गाव ।

।। श्लोक: ।। तनुताम्रदीधिति जटाम्रपल्लवो धृत बाल भाल विधु
पुष्प मालयक: ।
हरमौलि मंगल घटो घटयति तव कुशलाय गांगजल प्रपूरित: ।।

।। सूत्र प्रवेश: ।। भवहि भैरवमा ।। राग नाट ।। जति ।।

८६

जय जय जननि करह कल्यान, सुर नर कां तोहर पए ध्यान ।
बहु विध शस्त्र अस्त्र धर माता, तोंहहि एक अभयवर दाता ।
प्रथमहि सूत्रधार परवेश, देअथु अभय दूर होअ कलेश ।
जगत प्रकाश देवि पद सारे, नाट रागे गावए ई जति ताले ।

- - - - - -

सूत्र. ---- हे प्रिये, एतम आउ ।

नटी. --- (तिपन दुं हाथ) नाथ, मोर नमस्कार । कओने कारणे बोलाओल ।

सूत्र. ---- हे प्रिये, राजाक आज्ञा भएल । भगवतीक महोत्सव प्रभावती हरण नाम नाटक नाचब आदेश भेल अछ । - - -

नटी.---- प्रभु, भल कहल । हे नाथ, इहा प्रद्युम्न, हम प्रभावती काछए चलू ।

अंत --------

कालेवर्षतु वासवोवसुमती शस्यादिपूर्णा भवेदास्तां,
भूपतिरेष नृत्य विजयी यावद्गृहा धीश्वरं ।
यावत्तिष्ठति जाह्नवी हरजटाजूटे समुज्जृंभतां,
तावद्वीर जगत् प्रकाश नृपते: कीर्ति: कवित्वोज्ज्वला ।।

सर्वे ---- सर्व सिद्धि होअ ।। पंचम ।। झूमर ।।

कृपा करह जगत् जननि माता, तोंहे भवानि सब लोकक धाता ।
मोन सबक हमे देवि कर करूणा, कि कहब मात मोर तोहर गुना ।
जगत प्रकाश नृपति कर विनती, जनम जनम होअ तोहर पदे मती ।

इति श्री श्री जय जगत् प्रकाश मल्ल कृते प्रभावती हरण नाम नाटकं समाप्तम् ।।

नेपालाब्दे रसाश्वाश्वे गणिते काम वासरे ।
आषाढ़े बहुले पक्षे ग्रंथ: सम्पूर्णतामगात् ।।

कथा-सार ----- कृष्ण अपने परिवार सहित प्रवेश करते हैं । सभी अपने अपने परिचरोपरान्त राज - वार्ता के लिये चले जाते हैं । एकान्त-शान्त उपवन में श्री कृष्ण अपनी प्रेयसी रूक्मिणी और सत्यभामा के समक्ष अपनी मनोभिलाषा व्यक्त करते हुए कहते हैं कि तुम्हें देखकर मदन-पीड़ा उत्पन्न हो गयी है, अत: मान का परित्यागकर अपने मेरी रक्षा करो । प्रत्युत्तर में वे दोनों भी व्रीड़ा भाव से मुस्कुराती हुई अपनी सम्मति प्रकट करती हैं, और इस प्रकार यह दृश्य समाप्त होता है ।

परिवर्तित दृश्य में इन्द्र हंस-हंसी को आदेश देते हुए कहते हैं कि तुम दोनों देवकार्य-सिद्धि के लिये बज्रपुर जाओ और बज्रनाभ की पुत्री प्रभावती ~~को प्रभावती~~ को प्रद्युम्न से मिलाओ । वे दोनों उड़कर बज्रपुर के सरोवर में आजाते हैं । जब बज्रनाभ उन्हें आने का प्रयोजन पूछता है तो वे बताते हैं कि बज्रपुर देखने की अभिलाषा से ही वे यहां आये हैं, इसके साथ ही वे उस राजधानी में स्वतंत्रता से विचरण करने की अनुमति भी प्राप्त कर लेते हैं । तदनन्तर वे अन्त:पुर के सरोवर में आजाते हैं, जिन्हें देखकर प्रभावती आश्चर्य चकित रह जाती है । वह समीप आकर परिचय की जिज्ञासा प्रकट करती है । परिचय के पश्चात् इन दोनों में बातचीत प्रारंभ होती है । हंसी कहती है तुम्हारा रूप और वय उपयुक्त प्रियतम के अभाव में निरर्थक-से होते जा रहे हैं । इस संसार में, तुम्हारे सौंदर्य को देखते हुए, केवल प्रद्युम्न ही तुम्हारे पति होने योग्य है, और वह विस्तार से उनके गुण-शील का वर्णन प्रस्तुत करती है । इससे प्रभावती का हृदय प्रद्युम्न को पति रूप में प्राप्त करने के लिये

अधीर हो उठता है । वह प्रेम-पीड़ा का अनुभव करने लगती है, अत: वह हंसी से प्रार्थना करती हैं कि किसी भी स्थिति में वह प्रद्युम्न के साथ उसका संयोग करायें । हंसी कहती है कि आज तुम अपने पिताजी से हमारे विषय में चर्चा करना जिस से वे हमें बुलायें । इसके पश्चात् ही हम तुम दोनों के मिलन का उपाय सोचेंगे । प्रभावती अपने पिता से कहती है कि अन्त:पुर के सरोवर में निवास करनेवाले हंस-हंसी नाना देशों की अद्भुत कथा जानते हैं, आप भी उनसे अवश्य मिल लीजिए । उत्सुकतावश वे दोनों बुलाये जाते हैं और बताते हैं कि रुद्रनाम का एक नट अनेक चमत्कार और इन्द्रजाल दिखाने में अद्वितीय है । बज्रनाभ उस नट के इन्द्रजाल देखने की उत्कंठा व्यक्त करते हुए उन दोनों से उस नट को बुलाने के लिये निवेदन भी करता है ।

हंस-हंसी बज्रपुर से कृष्ण के समीप आकर कहते हैं कि इन्द्र ने आपसे विनती की है कि आप प्रद्युम्न को बज्रपुर भेजकर देवों का हित साधन करें । कृष्ण उनकी प्रार्थना स्वीकार कर प्रद्युम्न को गद और शाम्ब के साथ नट-वेष में वहां जाने का आदेश देते हैं । वे लोग बज्रनाभ के दरबार में पहुंचकर 'रामायण नाच' दिखाते हैं । राज्य में अकाल पड़ने से अप्सरायें ऋष्यशृंग मुनि को अयोध्यापुरी लेआती हैं -- इस अंश के पश्चात् बज्रनाभ अग्रिम कार्यक्रम को दूसरे दिन देखने की इच्छा प्रकट कर प्रस्थान करता है । शेषलोग भी अपने अपने निवास स्थान को चल देते हैं ।

मार्ग में प्रद्युम्न से हंसी कहती है कि किसी भी प्रकार वे आज रात प्रभावती से अवश्य मिलें । वे मिलन की योजना बना रहे थे कि उनकी दृष्टि पुष्पमाला ले जाती हुई एक दासी पर पड़ी

और पूछने पर ज्ञात हुआ कि वह प्रभावती के समीप ही जा रही थी। अतः पुरस्कार प्राप्त होने पर वे भ्रमर के रूप में उसी पुष्पमाला के साथ प्रभावती के शयन-कक्ष में चले जाते हैं। प्रभावती अपनी सखी सूचीमुखी से अपनी विरह-व्यथा प्रकट कर रही थी कि अकस्मात् प्रद्युम्न के प्रकट हो जाने से हृदय-कलिका खिल उठती है किन्तु व्रीड़ा के कारण वह मूक बन जाती है, हृदय की धड़कनें तो तीव्र हो जाती हैं पर पलकें झुक जाती हैं। चतुरा सखी बहाना बनाकर जब जाने लगती है तो प्रभावती उसे सावधान करती हुई कहती है कि यह रहस्य किसी अन्य पर प्रकट न होने पाये। राजस उपादानों से सज्जित एवं इत्र-फुलेल के उन्मादक शून्य शयन-कक्ष में अपरिचित किन्तु चिरपरिचित से प्रेमी धड़कते हृदयों से नयनों की भाषा में ही संभाषण कर रहे हैं। अपनी प्रेयसी के आन्तरिक भावों के अध्ययन के पश्चात् उसके सौंदर्य का वर्णन करते हुए प्रद्युम्न रतिदान की याचना करते हैं। काम-विह्वला प्रभावती उनींदी आखों से अपने प्रियतम की गोद में लुढ़क जाती है। इसीप्रकार कुछ समय तक हास-परिहास में तृप्ति का अनुभव कर प्रद्युम्न अपने निवास स्थान के लिये प्रस्थान करते हैं।

एक दिन प्रभावती की दो सखियां, चन्द्रावती और गुणावती, अपनी सखी में कुछ वैपरित्य देखकर समझ जाती हैं कि किसी पुरूष से अवश्य ही इनका सम्पर्क हुआ है, जिससे उन्हें चिन्ता भी होती है। प्रभावती उनकी इस व्यग्रता को परिहास का रूप देती हुई कहती है कि तुम दोनों को भी अविलम्ब ही पति की प्राप्ति होगी। इसी अवसर पर प्रद्युम्न आ जाते हैं और प्रसंग जानकर वे गद और

शाम्ब का स्मरण करते हैं । इन दोनों के आजाने पर, प्रभावती पुष्पमाला के आदान-प्रदान से गद-चन्द्रावती तथा शाम्ब-गुणवती को गांधर्व विवाह के मंगल सूत्र में बांध देती है । अब तीनों नव दम्पति विभिन्न कुंजों में विश्राम कर रहे हैं । गद अपनी प्रियतमा से आलिंगन एवं चुम्बन की याचना करते हैं, तथा शाम्ब अपनी मुग्धा प्रेयसी से रतिदान की । प्रत्युत्तर में वे दोनों मुग्धा वय के व्याज से अपने पिहित भावों को प्रकट करती हैं ।

उधर प्रभावती के सावधान करने पर भी उसकी सखी सुचीमुखी उसके गुप्त प्रेम-मिलन का रहस्य रानी को बता देती है । रानी विस्मय-विमुग्ध होकर इसकी सूचना अपने पति को देती है । वज्रनाभ क्रोधावेश में गर्जना करता हुआ प्रद्युम्न को तत्काल ही मृत्यु की गोद में सुला देने के लिये प्रभावती के कक्ष में आजाता है । इस विपत्ति को अकस्मात् आया देखकर प्रभावती भयभीत हो जाती है । प्रद्युम्न सांत्वना देते हुए कहते हैं कि डरने की आवश्यकता नहीं, यद्यपि एक क्षण में ही इन्हें यमपुर भेजा जा सकता है, तथापि तुम्हारे संबंध के कारण कुछ संकोच का अनुभव हो रहा है । भय-त्रस्ता प्रभावती अपने तथा अपने प्रियतम के प्राणों की रक्षा के लिये ब्रह्मा प्रदत्त अमोघ अस्त्र देती हुई कहती है कि ब्रह्माने यह अस्त्र मेरे पिताजी को दिया था, जिसका प्रहार अचूक है । इस अस्त्र के प्रभाव से प्रद्युम्न तत्काल ही वज्रनाभ को यमपुर भेजने में सरलता से सफल हो जाते हैं ।

समाचार प्राप्त कर कृष्ण भी गरूड़ से वज्रपुर उपस्थित होते हैं और वहां के सिंहासन पर प्रद्युम्न का राज्याभिषेक करते हैं ।

वहां की उचित व्यवस्था के पश्चात् सभी द्वारिका आजाते हैं । इस विजय के उपलक्ष में वहां आनन्दोत्सव मनाया जाता है । अंत में श्री कृष्ण कहते हैं कि यह संसार तो असार और क्षणिक है, केवल शिवतत्व ही शाश्वत है । अत: हम उन्हीं की आराधना करें ।

७. मलय गंधिनी --------

जगत् प्रकाश रचित प्रस्तुत नाटक ८६ पत्र एवं तीन अंकों में विभक्त है । इसके अंत में, अन्य कतिपय नाटकों की भांति, रचना-तिथि का उल्लेख नहीं है । नाटक का प्रारंभ और अंत इस प्रकार है ---

प्रारंभ -------- ।। ओमू नम: नाट्येश्वराभ्यां ।।

।। पद्मोद्भव मा ।। राज विजय ।। जति ।।

चम्पक मालति रूप त्रिभुवन सारे, प्रेम वसे एक तनु मेलहु विहारे ।
शिव कति करे धर निरम्ल चन्दा, पद जुग कोमल तुअ अरविन्दा ।
त्रिलोक नाचय हरगौरिहि साथे, अहिपति गण जत वर एहि हाथे ।
जगत् प्रकाश भने नाटक नाथ, चांद शेखर मोर निसि दिन साथ ।

--- --- --- --- ---

।। नाट ।। जय जय मंगल हमे सूत्रधार, सरूप सदाशिव जत् विचार ।
एब मति रंजन परवेश देल, बुधजन हृदय ऊलाव अति भेल ।
जगत् प्रकाश भन तुअ अनुरागे, चांदशेखर सिंह पावब सुजागे ।

पुष्पांजलि श्लोक के पश्चात् -----

सूत्र. ----- हे प्रिये, एतय आइ ।

नटी ----- (तिपन दुं हा) हे नाथ, हमर प्रणाम । की निमित्ते हमे एतय बजओलहुं ।

सूत्र, ----- हे प्रिये, महाराज श्री-३ निवास मल्लक देवीक महोत्सव थीक । तैं निमित्ते श्री श्री जय जगत् प्रकाश मल्लक आज्ञा भेल छ वीरेश्वरक प्रादुर्भाव मलय गंधिनी नाम नाटक अभिनय करू । - - - - - हे प्रिये, हमे वसुभूति राजाक कहनी करब गए, अहाँ मदनाक कहनी करू गए । मलय गंधिनीक कहनी अपने बेटी कहाउ गए ।

अंत: --------

वसुभूतिन ----- हे लोके ईश्वरीक कृपा हमरा सबहि कां मनोरथ पूर्ण भेल । अत: पर राजकुमार वीरक राज्याभिषेक करब ।
सर्वे ----- महाराज, समुचित ।

।। राज्याभिषेक ।। भैरवी ।। खए ।।

जलहि शिंचव नृप तनु पूत राखि, हरखे आनन्द भेलक दिन जाखि ।
पुरवए जे जन करिए तरान, दुखी दारिद्र चित तेजथु मलान ।
नगर मेदनि पर तोहर बखान, सुरपुर नहि होअ कतहु समान ।
जगत् प्रकाश मन गुणिगण हार, चांदशेखर सिंह प्रेमक भंडार ।

सर्वे ----- हे वत्स, ईश्वरीक प्रसादे अहाँ राज्यपरिपालन करू ।
वीरण --- भवानीक प्रसादे सबे सम्पन्न होएत ।
वसुभूतिन् ---- अत: पर ईश्वरीक भक्ति कए एतहि जन्म व्यतीत करब ।
सर्वे -------- हमराहु सबहि कए एहन मनोरथ ।

कथा-सार -------- रानी मदना अपने प्रियतम के वियोग में व्याकुल चित्त से शय्या पर करबटें बदल रही हैं । चतुरा सखी व्यजन से हवा कर रही है, किन्तु इस पवन से उसकी विरहाग्नि और अधिक प्रज्वलित हो उठती है । उनकी आंखें झर-झर बरस रही हैं । इसी समय राजा

वसुभूति भी अपनी प्रियतमा के विछोह के कारण आकुल हृदय और चंचल मन से रानी के शयन-कक्ष में प्रवेश करते हैं । चतुरा सखी बात समझ और बहाना बताकर पुष्पवाटिका चली जाती है । वसुभूति आवेश से प्रियतमा के अंगों का स्पर्श कर सौंदर्य-वर्णन द्वारा उसमें रति भाव को जागृत करते हैं । रानी तो पहले से ही काम-शर-पीड़िता है । अत: वे भी अपनी कामातुर अवस्था को प्रकट करती हुई राजा का अनुमोदन करती हैं ।[१] इन दो चिर पिपासित हृदयों के गाढ़ आलिंगन में आबद्ध होते ही शयन-कक्ष का पट बन्द हो जाता है ।

कुछ समय पश्चात् राजकुमारी मलय गंधिनी अपनी दो सहेलियों के साथ आती हैं और माता-पिता को प्रणाम कर पुष्पवाटिका-विहार के लिये अनुमति मांगती हैं । वे तीनों वाटिका में विहार कर रही हैं कि भयंकर गर्जना से भयभीत होकर एक कोने में छिप जाती हैं । पातालकेतु, मधुकेतु और चंडकेतु नाम के तीन राक्षस उस उद्यान में आता है और उन्हें एकाकिनी देखकर, मलय गंधिनी तथा उनकी एक सखी कमलावती को कंधे पर उठाकर भाग जाता है । अपनी नगरी में लाने के पश्चात् वह राक्षस उन्हें अनेक प्रलोभन और यातनाओं द्वारा अपने वश में लाने का अथक प्रयास करता है । निस्सहाय और निरूपाय की अवस्था में वे करूणार्द होकर भगवती का स्मरण करती हुई त्राण की प्रार्थना करती हैं । प्रत्यक्ष

---

१. रजनीपति बिनु रजनी की सोभ, पहु तजि तरूणी काहि नहि लोभ ।
परसि पाणि मोरि निबिबंध सखई, मुख सारद से देखि मन नहि सहई ।
मदनु अतनु की देव उपमान, शिखिवाहन तुअ भेल समान ।
तोहें दाहिन जा दिन मोहितराम, एहे विधि भनए नृपति प्रकाम ।
(प्रस्तुत नाटक, पृ.१७)

होकर भगवती कहती हैं कि तुम्हारे कुल की देवी होने के कारण तुम्हारी रक्षा करना मेरा कर्तव्य है । अत: तुम विश्वास रखो कि पृथ्वी के सर्वाधिक वैष्णव यहां आकर, इस राक्षस का संहारकर, तुम्हारा पाणिग्रहण, भी करेगा । इस आश्वासन से उन्हें आशा बंध जाती है, और वे धैर्य एवं साहस के साथ दिन व्यतीत करने लगती हैं ।

नारद ऋषि घूमते हुए हाटकेश्वर महादेव का दर्शन कर पातालकेतु के उद्यान की शोभा देखने के लिये जाते हैं । राक्षसपुरी में दो अपूर्व सुन्दरी मानव-कन्याओं को देखकर उन्हें बड़ा आश्चर्य होता है । उनका परिचय प्राप्तकर वे उनसे बताते हैं कि अविलम्ब ही भगवती की भविष्य-वाणी सिद्ध होगी, और वे स्वयं अमित्रजित के दरबार में आकर सम्पूर्ण घटना विस्तार से सुनाने के पश्चात्, उस राक्षस-पुरी तक पहुंचने के **मार्ग** का भी निर्देश करते हैं । नारद के कथानुसार अमित्रजित पूर्णिमा की रात में समुद्र-तट पर आते हैं, जहां पर कुछ अप्सराएं नृत्य कर रही होती हैं । विहार के पश्चात् वे अप्सराएं समुद्र में धंस जाती हैं । उन्हीं के साथ अमित्रजित भी उस राक्षस-पुरी तक पहुंचने में सफल होते हैं । वहां उन कन्याओं को देखकर उन्हें सत्यता का ज्ञान हो जाता है, अत: वे उन्हें अनेक प्रकार से सांत्वना देते हैं । आश्वस्त होकर मलयगंधिनी कहती है कि ब्रह्माने कंकालकेतु को एक त्रिशूल दिया है, उसीसे उसकी मृत्यु हो सकती है, अत: आप इस शस्त्र-गृह में छिप जायें । तदनुसार ही अमित्रजित छिप जाते हैं । इतने में पातालकेतु वहां आकर अनेक प्रलोभन और यातनाओं द्वारा राजकुमारी को अपने वश में करना

चाहता है । असफल होने पर वह दूसरे दिन की धमकी देकर और अपनी छाती में उस त्रिशूल को छिपाकर सो जाता है । मलयगंधिनी बड़ी कुशलता से, धीरे से, उस त्रिशूल को निकालकर अमित्रजित को दे देती है । त्रिशूल प्राप्त कर वे उस राक्षस को युद्ध के लिये ललकारते हैं, घोर युद्ध में तीनों राक्षस मारे जाते हैं । अनन्तर नारद का आगमन होता है । वे अप्सराओं का स्मरण करते हैं और उनके समुपस्थित होने पर "परिछनि," 'कोबर', 'जोग" आदि विहित गीत गाने का आदेश देकर, वे स्वयं उन दोनों का वैदिक रीति से विवाह-कार्य सम्पन्न कराने में लग जाते हैं । इसके पश्चात् वे अप्सराओं के साथ उस नव दम्पत्ति के लिये भूरिश: शुभकामना प्रकट करते हुए प्रस्थान करते हैं ।

अमित्रजित अपनी प्रियतमा एवं उनकी सखी के साथ, राक्षस-नगरी में रहने के कारण संसर्ग जन्य तथा अन्य अज्ञात दोषों के निवारणार्थ, वाराणसी के मणिकर्णिका घाट पर आते हैं । कुछ दिनों तक यहीं रहकर वे धर्म के साथ ही प्रेम-क्रीड़ा करने का निश्चय करते हैं । एक दिन देव दर्शन के लिये जाती हुई मलयगंधिनी अपनी सखी से कहती हैं कि मेरे शरीर के क्रम से ऐसा ज्ञात होता है कि मेरे गर्भ में कोई महापुरूष विराज रहे हैं । एतदर्थ हमें ईश्वरी की आराधना के लिये चलना चाहिये । इनकी भक्ति-भावना से प्रसन्न होकर जब देवी प्रत्यक्ष होती हैं तो वरदान के रूप में याचना करती हुई रानी कहती हैं कि मेरे गर्भ से जो पुरूष प्रादुर्भूत होनेवाला है वह जन्मोत्तर तत्काल ही षोडश वर्ष का हो जाये, स्वर्ग, मर्त्य

मर्त्य और पाताल तीनों में उसकी अव्याहत गति हो, और दस सहस्र वर्ष पर्यन्त राज्य करते हुए वह चिरजीवी पद को प्राप्त करे, यही आपसे प्रार्थना है ।[१] देवी एवमस्तु कहकर अन्तर्ध्यान हो जाती हैं ।

कमलावती अपनी सखी की प्रसव-वेदना का समाचार अमित्रजित को देती है, जिसे प्राप्तकर वे तत्काल ही प्रसूतिका और दैवज्ञजनादि को बुलाने का आदेश देते हैं । बालक के जन्म होने पर गणक बताता है कि और सभी गृह-स्थितियाँ तो उत्तम हैं किन्तु मूल नक्षत्र के मूल भोग में जन्म होने के कारण माता-पिता को कष्ट देनेवाला होगा ।[२] यदि इस बालक के माता-पिता छह महीने तक इसका मुंह नहीं देखें तो इस दोष का निवारण हो सकता है । इस दोष के कारण कमलावती उस नव-जात शिशु को गोदमें लेकर विकटा देवी के मंदिर में छोड़ने के लिये जाती है । जब वह उस बालक को रखकर चलने लगती है तो उसे आकाश वाणी सुनाई पड़ती है -----

विकट दानव कोटि विदारिणि जयति मा विकटा मम मंडलम् ।
भवन सन्निधि मा मुधिधेहि तं खलु भविष्यति षोड़ शहायन: ।।[३]

---

१. हे महाभाग, हमरा उदर विषये जे अछ से इहांक प्रसादे जन्मोत्तर तत्काल षोडश वर्ष वयस्क हो, इह स्वर्ग, मर्त्य, पाताल अव्याहत गति हो । इह दश सहस्र वर्ष राज्य पालना कए चिरंजीवी हो, इह ई तीनि प्रार्थना इहां पाहि करै छिअ ।
(प्रस्तुत नाटक, पृ.७४)

२. मूल नक्षत्र मूल भोग जनमल कथि, तें इहां कां इहांकरानी कां परम मन्द अछ । (प्रस्तुत नाटक, पृ.७७)

३. वही पृ.८१

कठिन तपस्या के पश्चात् वीरेश्वर का प्रादुर्भाव होता है। उनकी तपस्या और भक्ति से प्रसन्न होकर महादेव प्रत्यक्ष होते हैं, साष्टांग प्रणाम करते हुए वह कहता है कि यदि आप मुझसे प्रसन्न हैं तो इस संसार में मुझे सर्वोच्च स्थान प्रदान कीजिये। महादेव अभय मुद्रा में कहते हैं कि मेरे गणों में तुम्हें स्थान प्राप्त होगा, साथ ही तुमने वीर रूप में मेरी उपासना की है, अत: मैं इस स्थान पर वीरेश्वर के नाम से कल्पान्त पर्यन्त निवास करूंगा। वर प्राप्तकर वीरेश्वर प्रसन्नचित्त अपने माता-पिता से मिलने चल देता है। नारद से समाचार प्राप्तकर वसुभूति भी अपने परिजन सहित इन लोगों से मिलने के लिये आजाते हैं। सभी परस्पर आनन्द और उमंग से मिलते हैं। मलयगंधिनी जीवन पर्यन्त वाराणसी में ही रहने का निश्चय करती है। वीरेश्वर को सभी अव्याहत राज्य-प्राप्ति का आशीर्वाद देकर यथास्थान प्रस्थान करते हैं।

समीक्षा ----- प्रस्तुत नाटक में यत्र तत्र, अप्रासंगिक रूप में भी नैयायिकी भाषा में ईश्वर के स्वरूप की चर्चा की गयी है। कुछ लोगों के मन में शंका होती है कि सत्व, रज और तम इन तीन गुणों से युक्त एक ही ईश्वर सृष्टि, स्थिति एवं लय के कार्य सम्पादन करते हैं, अथवा इन तीन कार्यों के लिये तीन भिन्न स्वरूप वाले ईश्वरों की अपेक्षा रहती है। इसके निराकरण के लिये वे राजदरबार में आते हैं। नारद समाधान प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि एक ही ईश्वर अपनी विभिन्न क्रियाओं द्वारा तीनों कार्य सम्पादित करते चैतन्य रूप में तत्तत् का कार्यों में प्रतिबिंबित होते हैं। शरीर भेद

से क्रिया भिन्न होती है किन्तु आत्मा एक ही रहती है ।[१] इन श्लोकों की, सरल शब्दों में, टीका भी प्रस्तुत की गयी है । कुछ स्थल ऐसे भी हैं जहां नाटककार अपनी विद्वत्ता का अनावश्यक प्रदर्शन करता है जिस से उस प्रसंग का रस भंग हो जाता है । अमित्रजित और उनकी प्रेयसी अपने हृदय के भावों को प्रथम तो मैथिली के गीत द्वारा व्यक्त करते हैं, पश्चात् उसी का अनुवाद संस्कृत के श्लोक में दिया गया है और तत्पश्चात् उसी श्लोक की टीका भी प्रस्तुत की गयी है ।[२] इन बातों से दो तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है ------

---

१. शंका ---- विश्वात्मकः पुरुष एव पुरारिरादयः सृष्ट्यादि संहृत
कलाभिरनन्तरूपः ।
तत्किं पृथक् जनगणाहित वादजल्पैः, शंशेरत सुवकृतिनो
पृथग्धियत्वो ।।

समाधान ----- ज्ञानात्मनः समतिशयि गुणात्मनो वा,
सृष्ट्यादि रीतिरचना न विनाशरीरं ।
इत्यवविग्रहममुं विदधाति देवो,
भेदः एव खलु वास्तवतो न चान्यः ।।
(पृ. ४६-४८)

२. अमित्रजित -----
योग्यं वयस्तव मनोज्ञमिदं मदीयं, सन्मान संहरति दृष्टि तयैवसद्यः ।
तन्मे मृगाक्षि रभसेनशुचिस्मितेन, क्रीणीष्वमां विषहतं शराभितप्तम् ।।

हे प्रिये, तव इदं सरसं वयः । मम समुचितं मानसं, दृष्टितः दर्शनेनैव हरति । तत् हेतोः हे मृगाक्षि, रभसेन रभस पूर्वकं शुचिस्मितेन मनोज्ञस्मितेन मां क्रीणीष्व, स्वाधीनं कुरू ।

मलयगंधिनी ------
रामास्मि नाथ, भवतो मुकुलायमाना, क्रीड़ा सरसुमधुपस्य सरोजिनी च ।
तत्किं प्रिय प्रणय पेशलया गिरा मां, नानन्दयस्यमृतगर्भ गिरां विलोकय ।।

हे नाथ, भवतः रामा अहं अस्मि । अहं कथं भूता मुकुरायमाना मुकुलवत् अप्रगल्भ क्रीड़ी सरसु क्रीड़ी सरो विषयेषु मधु यस्य भ्रमरस्य सरोजिनी कमलिनी इव । हे नाथ, तत् हेतोः मां अमृत गर्भ गिराविलोकय दृष्ट्वा किं न आनन्दयसि । गिरा कथं भूतया प्रणाय पेशलया प्रणयेन चतुरया । (वही, पृ. ७१-७२)

प्रथम तो यह कि प्रस्तुत नाटक किसी विशिष्ट - टीकाकार विद्वान् की रचना है, और द्वितीयत: दरबार के घोर शृंगारिक वातावरण के मध्य भी दर्शन जैसे गंभीर विषय के रहस्यों का गूढ़ चिन्तन भी हुआ करता था । प्रस्तुत नाटक की एक अन्य विशेषता पौराणिक आख्यानों से इतर विषय-वस्तु के निर्वाचन में है ।

८. कालिय मथन --------

प्रस्तुत नाटक ४५ पत्र एवं तीन अंकों में विभक्त है । इसकी रचना-तिथि नेपाली संवत् ८०४ (१६८४ ई.) माघ शुक्ल पूर्णिमा है । इसमें कृष्ण की विभिन्न लीलाओं का वर्णन किया गया है । प्रथम अंक में कालिय-दमन का समावेश है, द्वितीय अंक में प्रलम्बासुर वध, चीर हरण एवं गोवर्धन धारण और तृतीय अंक में रासलीला तथा मानलीला का समावेश हुआ है । प्रस्तुत नाटक में ब्रजबुली एवं मैथिली का मिश्रण है, जिसमें बहुलता ब्रजबुली की है । इसका प्रारंभ इस प्रकार होता है -------

प्रारंभ ----- ।। ओम् नम: श्री नाटेश्वराय ।। कल्यान ।। चो ।।

भावहु शंकर गौरि अरधंगा ।। ध्रु. ।।

आदि इस शिव स्तुति के साथ ही सूत्रधार प्रवेश करता है -----

।। सूत्र प्रवेश ।। सुन्दर वदन री मा ।। सकाफी कानरा ।।

अंधक दलन गल गरल काम को दरप दलन सुलब काको ।। ध्रु. ।।

होत सकल सिधि नव निधि ताको, सेवक जो हो जगकर ताको ।

सोयि सयानो मानो सदय भगति भरोसा याको, सुख सरूप भजु लोको ।

।। पुष्पांजलि: ।। रत्नालंकरणेन्दु मंडल रूची वीची मनोहारिणो,

ब्रह्मो पेन्द्र महेन्द्र वंद्य पदयो: श्री मद्जगन्नाथयो: ।
श्री गौरी-शिवयो: परस्परं मुदा संभिन्नयो:,
कान्तयोर्भूष हाटक हीरसंग मनिभा: कुर्वन्तु वो मंगलम् ।।

सूत्र.----- हे प्रिये, वेग दे इहां आव ।
नटी ----(तिपं हुं) हे नाथ, मेरो परनाम । कओन काम को आज्ञा भयी है ।
सूत्र.----- नेपाल को अधिपति महाराजाधिराज श्री श्री सुमति जय जितामित्र मल्ल देव को परमेश्वरी प्रीति कामना सौं कृष्ण चरित नाच नाचबे को आज्ञा भयी है । - - - - - - - - -
हम नंदनंदन को काछ काछिहौं, तुम राधा को काछ काछो ।
नटी ----- नाथ, भले ।

अंत ------

काले वर्षतु वारिवाह पटली शस्यैर्युता मेदिनी,
भूयाद् भूमिसुर भरेन रहिता नित्यं निरीतय: प्रजा ।
भूपाल व्रजमौलिहीर विलसत्पादारविन्दो नृप:,
पाशादेष धरा सदा जयजितामित्र: सपुत्रानुज: ।।

श्री श्री जयजितामित्र मल्ल देवस्य सप्तांग राज्य वृद्धिरस्तु ।
।। पंचम ।। ए ।। अथिर कलेवर जानु है कमल पातक जल तूले ---(आदि)
इति नेपाल महीमंडल महीपति श्री श्री सुमति जयजितामित्र विरचिते कालीय मथनो पाख्यान नाटके तृतीयांकम् ।। संवत् ८०४ माघ शुदि १५ ।। श्रीकुन्ह श्री श्री सुमति जयजितामित्र मल्ल देव गन भागि राम प्रधनांग रावल सब्ब कालीय मथनो पाख्यान नाटक व्यारदन दये काव चोचकावतरा अनह लायाय मते बमहा यत्नन निदान याम माल ।।

कथा-सार------ कृष्ण अपने ग्वाल सखाओं के साथ यमुना पुलिन पर क्रीड़ार्थ आते हैं । कालीदह में कालिय नाग के कारण विषाक्त हुए पानी का पान करने से सभी ग्वालों को मूर्च्छा आ जाती है । कृष्ण अपनी शक्ति से उन्हें होश में लाते हैं और कालिय नाग की कथा बताकर वे स्वयं उस दह में कूद जाते हैं । नाग उन्हें अपने पाश में जकड़ लेता है । यह देखकर सभी ग्वाल सखा भयभीत हो जाते हैं और कुछ तो नन्द को भी सूचना दे आते हैं । कृष्ण की स्थिति देखकर नन्द अत्यन्त व्याकुल हो जाते हैं । कृष्ण जब देखते हैं कि तट पर सभी व्याकुल हो रहे हैं तो वे उस नाग-पाश से मुक्त होकर उसके फनों पर नृत्य करने लगते हैं । उनके पाद-प्रहार से नाग के अंग-अंग शिथिल पड़ गये हैं । नाग-पत्नियाँ विनय के स्वर में अपने पति के अपराधों की क्षमा याचना करती हुई पति-दान की भीक्षा मांगती हैं । कृष्ण उस नाग को रमण द्वीप जाने का आदेश देते हुए कहते हैं कि तुम्हारे मस्तक पर मेरे पद-चिन्हों को देखकर गरूड़ तुम्हें परेशान नहीं करेगा । इस उपलक्ष्य में ब्रजवासी आनन्दोत्सव मनाते हैं ।

कृष्ण और बलभद्र अपने ग्वाल सखाओं के साथ खेल रहे हैं । प्रलम्बासुर नाम का राक्षस उद्दाम ग्वाल के वेष में आकर उस खेल में सम्मिलित हो जाता है । कृष्ण इस रहस्य को जानकर उसके वध के लिये मन में योजना बनाते हुए बुफोबल खेल खेलने लगते हैं । इस खेल में वह असुर हार जाता है, अत: वह अपनी पीठ पर बलभद्र को बैठाकर भांडीर वट तक लेजाता है । वह असुर उस वृक्ष के नीचे उन्हें नहीं उतारकर आगे बढ़जाता है और अपना भयंकर रूप प्रकट

करते हुए उन पर आक्रमण करता है किन्तु बलभद्र के एक ही मुष्टिका प्रहार से उसके प्राण निकल जाते हैं । कृष्णादि वहां आकर विस्मय प्रकट करने लगते हैं । ब्रज में इस निमित्त उत्सव मनाया जाता है ।

गोपियां एक दूसरे से कहती हैं कि अग्रहण मास में नित्य यमुना स्नान कर कात्यायनी देवी की पूजा करते हुए हम उनसे नंदनंदन को पति रूप में मांग लें । इस प्रकार विचार कर वे अपने अपने वस्त्रों को तट पर रखकर यमुना में जल-क्रीड़ा के लिये कूद पड़ती हैं । किसी कुंज में छिपे हुए कृष्ण उनके वस्त्रों को लेकर कदम्ब-वृक्ष पर चढ़ जाते हैं । हठ और मान के कारण गोपियां कुछ समय तक तो पानी में रहती हैं किन्तु जब उन्हें शीतल पवन का झोंका असह्य हो जाता है तो वे वस्त्र के लिये कृष्ण से प्रार्थना करने लगती हैं । कृष्ण कहते हैं कि तुम सब इस वृक्ष के नीचे आकर अपने वस्त्र ले जाओ । अनुनय-विनय और भय दिखाने से हारकर गोपियां वृक्ष के नीचे आती तो हैं किन्तु "लाहा तिन तिन दुदुओ पुराव बने" अर्थात् दोनों हाथों से स्तन और गुह्यांग को ढक कर । रसीले कृष्ण कहते हैं कि तुम लोगोंने नग्नावस्था में यमुना में स्नानकर बड़ा अपराध किया है, अत: हाथ जोड़कर कात्यायनी देवी से इसके लिये क्षमा याचना करो । तदनुसार ही सभी गोपियां अपने वस्त्र लेकर चली जाती हैं और कृष्ण भी अपने घर के लिये प्रस्थान करते हैं ।

घर आने पर अपने यहां सभी ब्रजवासियों को विभिन्न पूजा की सामग्री के साथ बैठे हुए देखकर विस्मय में वे उसका कारण

जानना चाहते हैं । नन्द उन्हें कहते हैं कि आज इन्द्र की पूजा होगी जिससे संतुष्ट होकर वे वृष्टि करेंगे और देश में सुभिक्ष होगा । इसका प्रतिकार करते हुए कृष्ण कहते हैं कि वृष्टि में इन्द्र का कुछ भी हाथ नहीं है, प्राणी अपने कर्मानुसार वस्तु प्राप्त करता है, वर्षा प्रकृति की देन है ; अत: इन सामग्रियों से हम गोवर्धन की पूजा करें जिनसे हमारे ब्रजवासी अनेक रूपों से उपकृत हैं । तदनुसार ही उनकी पूजा होती है और कृष्ण गोवर्धन के रूप में प्रकट होकर प्रत्यक्ष भोग ग्रहण करते हैं जिससे सभी गोपों को आत्मिक संतोष और पर्वत की महत्ता का अनुभव होता है । इस घटना से इन्द्र अपना अपमान समझकर उन गवांर ग्वालों को शिक्षा देने के लिये मेघों को आदेश देते हैं कि अतिवृष्टि और पत्थर की वर्षा से ब्रजवासियों को घोर संकट में डाल दिया जाये । इस आपत्ति के प्रतिकार में कृष्ण गोवर्धन धारणकर सभी ब्रजवासियों को अपने सामानों के साथ उसके नीचे आ जाने का आदेश देते हैं । सात दिन के पश्चात् वातावरण शान्त हो जाने पर सभी अपने घर जाते हैं । इस घटना से इन्द्र का अहम् नष्ट हो जाता है और वे नत मस्तक होकर कृष्ण से अपने अपराधों के लिये क्षमा याचना करते हैं । मातृ वत्सला यशोदा अपने कन्हैया को क्लान्त समझकर माखन-रोटी खिलाने के लिये घर ले जाती हैं ।

चांदनी रात में वन की शोभा निरखते हुए कृष्ण अपने मन में सोचते हैं कि यह चांदनी रात रासलीला के ही उपयुक्त है, अत: बांसुरी की ध्वनि से सभी गोपियों को बुलाना चाहिये । बांसुरी

की मनमोहक एवं उन्मादकारी ध्वनि से आकृष्ट होकर सभी गोपियाँ अपने पति-पुत्र तथा धन-धर्म का परित्याग कर अति विह्वलता से कृष्ण के समीप आ जाती हैं । वे मुग्ध दृष्टि से एकटक उन्हें ही निहार रही हैं । कृष्ण उनसे पूछते हैं -----

देखि भयानक यामिनी छाड़ि धर्म धन धाम,
तुम सब मिलि कुलि कामिनी आये कवने काम ।

सर्व्वा:---- याहि चित्त सौं घर बसौं भले लिये तुम ताहि,
ब्रज में कैसे जायिहौं पाउ कहां अब वाहि ।

कृष्ण ---- दीनो दयित न छाड़िये उपपति सेवे पाप,
जानि जाव घर **आपनो** छाड़ो मन को ताप ।

सर्व्वा: --- तुम मया करि कहत भले पति सेवा उपदेश,
तुम सौं दूजा कओन पति कहो साचू परमेश ।

अंत में कृष्ण उनकी प्रार्थना स्वीकार कर पुष्प-क्रीड़ा करने लगते हैं । क्रीड़ा के मध्य से अकस्मात् उनके अन्तर्ध्यान हो जाने पर सभी गोपियाँ व्याकुल चित्त से उन्हें विभिन्न कुंजों में **खोज** रही हैं । एक कुंज में राधा को एकाकिनी देखकर कृष्ण प्रकट होते हैं और उनसे कहते हैं कि तुम से मेरा अत्यधिक प्रेम है, तुम मेरी पीठ पर चढ़ चलो । राधा उनकी पीठ पर चढ़ने का उपक्रम कर ही रही हैं कि कृष्ण पुन: अन्तर्ध्यान हो जाते हैं । अन्य गोपियाँ यह समाचार जानकर राधा को कोसने लगती हैं । कृष्ण प्रकट होकर उनके साथ विभिन्न प्रकार की क्रीड़ाएं करने लगते हैं । इसी समय एक कुबरी आकर कृष्ण से कहती है ------

"मोर देखि के कूबर दाते ज्ञान न बोले बाते,
हाथ न दे लखि मृत की चूची ताकि ताहि मारौं लाते ।"

"हे प्राण नाथ, इन ग्वन सौं कबोन रस पाये । हम सौं मिलि अब रस लेव ।" वह अन्य गोपियों को फटकारती हुई कहती है कि "अरे छिनारियो तुम्हारे काम भयो, अब इहां काहे रहत हो । जात अपने घर ।" कृष्ण सहित सभी गोपियां कुछ समय तक उस प्रहाचिका के साथ हंसी-खेल करते हैं और अपने घर के लिये प्रस्थान करते हैं । श्री कृष्ण यशोदा और नंद को प्रणाम कर परमेश्वरी की वन्दना करने का निवेदन करते हैं ।

समीक्षा ----- प्रस्तुत नाटक में वर्णित विभिन्न लीलाओं में भागवत पुराण का ही अनुकरण किया गया है । इसी आधार पर नाटक में भी गीतों द्वारा पृष्ठ भूमि के रूप में प्रसंगानुरूप प्राकृतिक वातावरण भी वर्णित है । भागवत पुराण के दशम स्कन्ध के बाइस वें **अध्याय** के शब्दों को ही इस नाटक की चीर-हरण-लीला में उद्धृत किया गया है । नाटककारने अपनी ओर से एक वाक्य **भी** भी उद्भावना नहीं की है । उसकी कल्पना शक्ति का व्यय केवल अश्लील शृंगार के वर्णन में दृष्टिगत होता है । 'छिनारि; मृत की चूची' आदि ग्राम्य शब्दों के प्रयोग से समकालीन दरबारी वातावरण एवं मनोवृत्ति पर प्रकाश अवश्य पड़ता है ।

९. मदालसा हरण :-------

सुमति जितामित्र मल्ल रचित प्रस्तुत नाटक ३० पत्र और एक ही अंक का एक नृत्य नाटक है । इसकी रचना तिथि नेपाली

संवत् ८०७ (१६८७ ई.) है । इसमें प्रत्येक वाक्य के पश्चात् विभिन्न ताल मात्राओं का अनेकश: उल्लेख किया गया है, जिससे मूलकथा कुछ वाक्यों में ही समाविष्ट है, जो इसके आदि एवं अंत से प्रकट है ---

प्रारंभ ------ ।। ओम् श्री-३ नाटेश्वराय नम: ।। देवल्हाय ।। फाक ।। धायं जिगि-३ तकुं तकुं धरा जिं-३ तकुं तकुं धा घवा-३ ।। तह ।। टाफें-३ नक फें तुं तुं टाफें टा⊗ तुं फें तुं टाफें ।। देवल्हाय ।। आहाहा चश्च च । तध्य कुंटां⊗ तां: धारा गतेक दां धाते गदां

ते - - - - - - - - -

- - - - - - - - -

।। नान्दी मे ।। धनाश्री ।। दूजमान ।।

विमल बहय शिर सुरसरि धार नाचत मगन शशिशेखरा,
सुमतिजितामित्र कह नृपईश देथु सदाशिव अभय वरा ।

।। मे पु ।। तह ।। टाफें-२⊗ टाफें तुफें⊗ टा फेनक फे ताफें ⊗ टाफें फें ता फेनक टाफें तुं टा फेनक फें तुं टाफें⊗ तुं फें टाफें ताफें-३ टा टा थेरेग गिंन कुटा⊗ तिं गिनकुटा - - - -

- - - - - - - -

।। सूत्र प्रवेश ।। इनाय मा ।। थ ।। दुज ।। सुगज वदन देव सब गणा, सुरगण सरणा विघ्नन हरणा ।। मे पु-२ ।। चा च श्च श्च ।। तैं ड॰ नैं ड॰ तो घाग धाजीयं दयतां धाग धाजीयं दयतां धा⊗ धा घग-३ ।। भमल हाल के ।। चा च श्च श्च ।। धा धा जीयं दयतां-२ धाग-२ धाजीयं दयता धाग धाजीयं - (आदि आदि)

अंत ------ ।। देवी भाव ।। भैरवी ।। ख ।। पुर रिपु सुन्दरि शिवा पद युग मोर गति, महेश्वरी गिरिवर सुते एहि मति ।। (पुन:

११०

पूर्वानुसार अनेकश: ताल मात्रा का उल्लेख है) । इति मदालसा हरण भारदी संमत नाम नाटक सम्पूर्णं समाप्त: ।। (पुन: ताल मात्रा) संवत् ८०७ मदालसा हरण दयका ।। ते था चुंपा कुरा ।। धा-३ ।। तह जिधा जिं ना तकुं न्यकुं धा जिं नां-२ ⊗ धाजिं-२ नां तकुं न्युकं धा ।। शुभमस्तु सर्वदा ।।

कथा-सार -------- जैसा कि कहा जा चुका है कि इस नाटक में नृत्य पर अधिक बल दिया गया है जिसके कारण मूल कथा सूत्र रूप से कुछ ही वाक्यों में वर्णित है । पातालकेतु नाम का राक्षस शूकर का रूप धारण कर यज्ञ-विध्वंश किया करता है । गालवादि ऋषि महाराज शत्रुजित से राजकुमार कुवलयाश्व को मांगकर ले आते हैं और उनकी सहायता से यज्ञ की पूर्णाहूति करते हैं । कुवलयाश्व के भय से वह राक्षस अपनी नगरी को भाग जाता है । उसका पीछा करते हुए राजकुमार जब वहां पहुंच ते हैं तो मदालसा को देखकर विस्मय विमुग्ध हो जाते हैं और पातालकेतु को मार कर उससे गांधर्व विवाह भी कर लेते हैं । तालकेतु अपने अग्रज की मृत्यु का बदला लेने के लिये कपट ऋषि का रूप धारण कर उन्हें धोखे में डाल देता है और उनके घर समाचार देता है कि किसी राक्षस ने उन्हें मार दिया है । इस शोक से मदालसा अपने प्राण को त्याग देती है । घर आने पर जब कुवलयाश्व को यह समाचार मिलता है तो वे बहुत व्यथित होते हैं, तथा समुद्र तट पर ही अपना अधिक समय व्यतीत करने का निश्चय करते हैं । उनके नाग-मित्र के पिता कठिन तपस्या से महादेव और सरस्वती को प्रसन्न कर मदालसा को अपने पूर्व रूप में ही प्राप्त करता है और कुवलयाश्व को सौंप देता है ।

१०. भाषा नाटक --------

भूपतीन्द्र मल्ल कृत प्रस्तुत नाटक में कुल २२ पत्र हैं, जिसमें पत्र १७ पर "आरति गीत" के साथ नाटक की रचना-तिथि दे दी गयी है । इससे यह स्पष्टत: ज्ञात होता है कि नाटक की समाप्ति इसी पृष्ठ पर हो जाती है । पृष्ठ १८ पर "कृष्णोक्त शृंगार" शब्द तो प्रयुक्त हुआ है किन्तु शृंगार का पद नहीं है । इसी पृष्ठ से २२ पृष्ठ तक "षट् दर्शन रामे" शब्द के साथ नेवारी भाषा में कुछ लिखा अवश्य गया है, किन्तु उसका अर्थ नहीं लगाया जा सका । प्रस्तुत नाटक में कृष्ण विषायक प्रसंग का समावेश नहीं है, अत: ऐसा प्रतीत होता है कि पृष्ठ १८ से नेवारी भाषा में किसी अन्य नाटक की रचना प्रस्तुत की गयी होगी । किन्तु प्रारंभिक सत्रह पृष्ठों, जो कि भाषा नाटक से संबंधित हैं, की भाषा मैथिली है । अत: यह रचना भी हमारे अनुशीलन का महत्वपूर्ण अंग कही जायेगी । इस नाटक के सत्रह पृष्ठों में ही तीन कथाएं समानान्तर रूप से चलती हैं, जिसमें प्रत्येक तीन-चार वाक्यों के पश्चात् कतिपय पात्रों का प्रवेश होता है और वे एक वाक्य के उच्चारण के साथ ही प्रस्थान भी कर जाते हैं । अतएव मुख्य कथा के सूत्र को समझना कठिन हो जाता है । इसकी रचना तिथि नेपाली संवत् ८१५ (१६९५ ई.) कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी है ।

प्रारंभ -------- ।। श्री-३ नृत्य नाथाय नम: ।।

नान्दी मे ।। हलन दालक मा ।। नान्दी मालव ।। चौ ।।

जसु सुत गणपति सब जग जन गति विकट प्रमथ गण संग ।
वसन बघंबर अहिपति भूषाण अग्न धुथुर विष भंग ।।

शिर सुरसरि जाहि शशधर खंड ताहि पलरल जटा अति सोहे ।
पांच वदन जसु पाणि चतुर तसु त्रितय नयन जग मोहे ।।
हरि विहि सुरपति तुज आराधना कर भुगुति मुगुति दुहु पाव ।
विघ्ननि हर हर सिद्ध दयिज शिव एहन श्री भूपतीन्द्र गाव ।।

सूत्र प्रवेश ।। गणपति मा ।। कोलाव ।। ज ।।

विभूति लेपति तनु उर मुंडमाल, एक करे अभय अपर जपमाल ।
शायक वदन तिय नयन विशाल, शश धर शिर भल भगत कृपाल ।
भन भूपतीन्द्र सूत्र परवेश, शिव पदे नत भय परम सुवेश ।

अंत ------- ।। आरति गीत ।। पंचम ।। चो ।।

अथिर कलेवर जानु हे कमल पातक जल तूले ।। ध्रु. ।।
भवन कनक जन रजत आदि गत थिर नहि रह सब जाने,
सुत मित सब धन सुख दुख सलिल अथिर जानल मने । ---आदि

- -

संवत् ८१५ कार्तिक वदि १३, श्री श्री भूपतीन्द्रमल्ल देवेन स्वमे साफूल दयका जुलो ।। शुभमस्तु सदा ।।

कथा-सार -------- बज्रबाहु नाम का एक वैश्य राजा एक क्रूर और नृशंस शासक के रूप में विख्यात है । प्रजा अत्यन्त असंतुष्ट है । हेमरथ नाम का एक रण साहसी उसके अत्याचार से ऊब कर उसे द्वन्द्व युद्ध के लिये ललकारता है । इस युद्ध में वह वैश्य शासक पराजित हो जाता है । इसे अपने पापों के कारण एक रोगी पुत्र जन्म लेता है, जिसे जन्म ले ते ही वह अपने मंत्री की सलाह से जंगल में फेंक देने का आदेश देता है । उस जंगल से जाते हुए एक ब्राह्मण के कानों में उस

नवजात शिशु के करूण-क्रन्दन का स्वर पड़ता है, अत: वह उस शिशु को लेकर धार्मिक और दयालु राजा चन्द्रसेन के दरबार में आता है । राज्याश्रम में उस शिशु का पालन-पोषण होने लगता है । कृशाम ऋषि तथा अन्य कुछ योगियों के कथनानुसार उस बालक में राजा के लक्षण विद्यमान हैं । अतएव दयालुता के कारण वे उसे अपने मंत्र बल से पूर्ण नीरोग बना देते हैं । उस बालक का नाम भद्रायु रखा जाता है । हेमरथ अपने क्रांतिकारी दल के साथ बज्रबाहु को राज्यच्युत करने के उपक्रम में है कि इसी अवसर पर चन्द्रसेन उसे सहायता करता है, जिसमें उसे विजय भी मिलती है । चन्द्रसेन कहता है कि हे बज्रबाहु, तुमने जिस नवजात शिशु को जंगल में त्याग दिया था, वही यह भद्रायु है और मेरी दुहिता का पति भी है । इस समाचार से उसके हृदय में आनन्द के साथ ही वैराग्य की भावना भी उत्पन्न होती है । अत: वह अपना राज्य भद्रायु को सौंपकर चन्द्रसेन, हेमरथ आदि के साथ तपस्या के लिये जंगल को प्रस्थान करता है ।

११. रामायण नाटक :----------

केवल २२ पत्रों के प्रस्तुत नाटक में १५ अंकों की योजना की गयी है । नाटक के अंत में रचना-तिथि के साथ भूपतीन्द्र मल्ल के नाम का उल्लेख है, इसके साथ ही राज वर्णना में भी मनु से मल्ल वंश की परम्परा दिखाते हुए सबसे अंत में भूपतीन्द्र मल्ल के नाम का ही उल्लेख है ----- यद्यपि इनके पश्चात् दूसरे भी राजा हुए । इन दो तथ्यों के आधार पर प्रस्तुत नाटक भूपतीन्द्र मल्ल

रचित सिद्ध होता है । किन्तु इसके विपरीत, इस नाटक के प्रत्येक गीत के अंत में भणिता के रूप में सुमति जितामित्र मल्ल का नाम आता है और साथ ही इस नाटक की रचना एवं गीत शैली सुमतिजितामित्र मल्ल की अन्य रचनाओं की भांति ही है । इन दो तथ्यों से यह प्रमाणित होता है कि प्रस्तुत नाटक इनकी ही रचना है । इस नाटक के संबंध में एक बात यह भी उल्लेखनीय है कि इसकी अंतिम ९ पंक्तियों की स्याही में भिन्नता है, जिसे परवर्ती पृष्ठों में कोष्ठक के अन्तर्गत निर्दिष्ट किया जा रहा है । इसकी रचना-तिथि नेपाली संवत् ८१२ (१६९२ ई.), वैशाख कृष्ण चतुर्थी है ।

भू-भार-हरण के लिये क्षीर सागर के तट पर शेषशायी से ब्रह्मा सहित अन्य देवों की प्रार्थना से लेकर रावण वध तक की कथा इन २२ पत्रों में ही वर्णित है । अत: कथा का महत्व नहीं है किन्तु राज वर्णना के रूप में मनु से जो मल्ल वंश की परम्परा वर्णित है, उसका महत्व है । हो सकता है कि इस वर्णना से ऐतिहासिक तथ्यों पर भी कुछ प्रकाश पड़ने की संभावना हो ।

प्रारंभ ------ ।। ओम् नम: श्री नाटेश्वराभ्यां ।। नान्दी मे ।। भैरव ।। रू थ प्र ।।

शिवस्तुति के साथ सूत्रधार प्रवेश करता है -----

।। राज वर्णना ।। सोरठा ।। गौरी ।। खं चो ।।

सुरूज संभव मनु तसु सुत काकुष्ट वैनु अनूप पुष्य अनरण्य पृथु त्रिसंशु भूप प्रवर घंधुमार भूप पवनाश्व मान्धाता सुसंधि नाम धृत शंधि भवत

गुणधाम । अजित सगर असमंजा पुनु अंशुमान दिलीप भूप भगीरथ
काकुष्ठ सुत रघु संतोषपाद कुलदीप शंषान समुद्रसेन सुधीर भूप
अग्निवर्ण श्री गर्ग मदन सरूप । पशुश्रुत अम्बरीष नहुष च नाभाग
सुसाज अज दशरथ राम सुत कुश विसारद हेम्चन्द्रराज सुचन्द्र श्री
धूमा संजय भूप सुवर्ण खति कृशाश्व मनसिज रूप । सोमदत्त जन्म जय
नृप प्रभृति भूप मतिमान वंशमनि खित नृपति मतिमान काकु वर्म्मा
नृप जान, पशु पुष्य भास्कर विदित चरित्र तुमि वर्म्मा चन्द्र वर्म्मा
प्रवर सावित्र । जय वर्म्मा वर्ष वर्म्मा गर्व वर्म्मा नरेश, पृथ्वीवर्म्मा
ज्येष्ठ वर्म्मा कुबेर वर्म्मा धरेश । हरि सिद्धि हरिदत्त पशुदत्त भूप
पात वर्म्मा शिव वृद्धि वसन्त अनूप । पुष्यदेव सुदत्त श्रीपति वसन्त
देव शिवदेव महीप वृषादेव शंकर धर्म देव मान देव महीदेव वसन्त
उदय मनोदेव कामदेव शिवदत्त नरेन्द्रदेव भीम शिवदेव । अंशुमान
मानदेव कृत वर्म्म भीमार्जुन नन्दभूप शिवदेव नरेन्द्र बन्धु दत्त वरदेव वर भूप ।
शंकर वर्द्धमान संकर जान भीमार्जुन जयदेव वरदेव सयान । चन्द्र वारार्जुन
मानदेव राघव शंकर देव गहदेव नृप विक्रम नरेन्द्र नृपति चक्र सुसेव
गुणकाम उदय निर्भय भोजराज रूद्रदेव लक्ष्मी कामदेव सुसाज । जयदेव
भास्कर वर वरदेव पद्मदेव नागार्जुन शंकर वामदेव श्री हर्ष शिवदेव
इन्द्रदेव निपुन मानदेव नरेन्द्र नन्द रूद्रदेव अमृत भीमेश्वर महेन्द्र देव ।
गुण कामदेव विजय कामदेव अरिमल्ल रसेश, अभय मल्लदेव जयदेव भूप
अनन्तमल्ल धरेश । जयानन्द देव जयतुर्ग-मल्लदेव जयरूद्रदेव जयारिमल्ल
देव । आदित्यमल्ल जयराज जयानन्द रूद्रमल्ल नृप ईश, नान्यदेव
नृप गंगादेव भूप नरसिंह महीशराम सिंह भवसिंह सिंहदेव नेपाल कमल
राज्ये हरिसिंह देव । वल्लार सिंह देवमल्ल नागमल्ल अशोक जयस्थिति

-मल्ल नृपति यक्षमल्ल रायमल्ल भूप भुवनमल्ल प्राणमल्ल विश्वमल्ल त्रैलोक्यमल्ल जगज्योतिर्मल्ल नरेश मल्ल जगत् प्रकाश मल्ल । सुमतिजितामित्र मल्ल नरपति भूपतीन्द्रमल्ल जान, सूर्ज आदि मनुवंशावलिक सुनय निधान । नृपगण पूजित जयजितामित्र, कहय विजमति प्रवल सावित्र ।

--- --- --- --- ---

राम जनकसुता होयब आज, रिफाओव हमे समाज ।

।। सूत्र निसार ।।

अंत------- ।। नाट ।। प ।। कपि पति चलु आबे उदधिक तीर,
पार उतरि लंका घेरब सबे वीर ।

।। विभास ।। चो ।। आयल निकट सबे जलनिधि तीरा,
तोरित कहब गय दश मुख ठाम ।

।। वेरावल ।। चो ।। जाय बुझब हमे विभीषन चालि,
आय निवेदव मे सबे कालि ।

।। देव भाव ।। इति पंचदशांक समाप्त ।।

[संवत् ८१२ वैशाख वदि ४ व्यकुन्ह श्री भूपतीन्द्रमल्लन दयका दिन जुल ।। शुभम् ।।

।। मध्यारि ।। ए ।। पल पल पिय लगनि नई नई भई ।। ध्रु. ।।

उपवन कोइल कलकल कोमल कमल सुधि सब गई ।
हिमकर केसर किसल भासुर विसगुण रूचि विलई ।
मलयज मारूत भव रस मारूत स्वर गति विरस भई ।
रसिक सिरोमणि भूपतीन्द्रमल्ल यह कहत हय विजई ।
अधिक की करब विनति मा ।।]

इस कोष्ठकवाले अंश की स्याही में भिन्नता पायी जाती है, किन्तु लिखावट एक-सी ही है ।

१२. माधवानल --------

प्रस्तुत नाटक ५८ पत्र और तीन अंकों में विभक्त है । बीच के पत्र ११ और १२ (४ पृष्ठ) नहीं हैं । इसकी रचना-तिथि नेपाली संवत् ८२४ (१७०४ ई.), पौष कृष्णा द्वितीया है । इस नाटक की नवीनता पुराणेतर दन्त कथात्मक विषय-वस्तु के चुनाव एवं तत्कालीन वातावरण के मध्य भी वेश्या को नायिका के रूप में स्वीकार करने में है । इस नाटक में एक शास्त्रज्ञ - ब्राह्मण के राजनर्तकी से अनन्य प्रेम का सरस चित्रण प्रस्तुत किया गया है । परस्पर के रूप गुण के आधार पर प्रथम दृष्टि में ही इन दोनों का प्रेम हो जाता है । इस प्रेम का स्वरूप प्रारंभ से ही अतीन्द्रिय रहता है । वेश्या के विशुद्ध और एकनिष्ठ प्रेम का चित्रण कर, उसके चरित्र को सामाजिक स्तर पर ऊंचा उठाकर, उसके महत्व को प्रदर्शित करने का प्रयास किया गया है । यही कारण है कि महाराज विक्रमादित्य भी उसके अनन्य प्रेम से प्रभावित होकर उसकी सराहना करते नहीं अघाते ।

इस नाटक का प्रारंभ और अंत इस प्रकार है -----

प्रारंभ -------- ।। श्री-३ नाटेश्वराय नमः ।। नान्दी श्लोक ।।

कुण्डलीशकृत कृण्डलो विभुः खण्डितः प्रखर दैत्य मण्डलः ।
चण्डिका-पति शशांकशेखरः पातु वो नटनायको मुदा ।।

।। नान्दी मे ।। श्री राग ।। ज रू थ अ प्र ए प ल ।।

जय जय शंकर ईशर रजत धवल बल रूपे । आरे ।।

आदि शिवस्तुति के पश्चात् -----

।। सूत्र प्रवेश ।। -- -- -- पुष्पांजलि श्लोक ।।

रूचिरेपुरहर मौलौ तुहिनाचल राजकन्यया निहित: ।
द्रुम भव परिमलकलित: पुष्पांजलि: पातु वो नित्यम् ।।

सूत्र. ----- हे प्रिये, इतस्ताव दागम्य ताम् ।

नटी ----- (तिपं हुं) अज्जौ उत्तवंदामि । को निओ ओ अनुचिही अदुक्ति ।

सूत्र. ----- हे प्रिये, श्री श्री जय भूपतीन्द्र मल्ल देव महाराजधिराजेना पूर्व्वे माधवनलनाम नाटकमभिने तुमहमाज्ञप्तो स्मि ।

--- --- --- --- ---

सूत्र. =--- हे प्रिये, हमे माधवानल होयब, तोहैं कामकन्दला भए नृत्य करय जायब, चलू ।

नटी ---- नाथ, विजय करू ।

अंत ------ ।। भैरवी मे ।। ख ।।

चंडेश्वरी भगवति जगत् जननि, दुरित विनाशनि दानव दलनि ।
जुग जुग होयब तुअ पद दास, भूपतीन्द्र नृप कह हैं मोर आस ।।

विक्रमादित्य ----- हे लोके, सुनु ।। आर्शीवाद श्लोक ।।

विख्यातो रघुवंशमंडन मणि गांम्भीर्य वारां निधि: ,
प्रज्ञानिर्जित निर्जराधिप गुरूर्द्धैनिक चिन्तामणि: ।
राजन्यौघशिरोमणिर्गुणखनि: नैपाल भूमीश्वरो,
राज्यंपाति निरन्तरं स्मरसम: श्री भूपतीन्द्र: प्रभु: ।।

श्री श्री जय भूपतीन्द्र मल्ल देव महाराजधिराजस्य सप्तांग राज्य ----- वृद्धिरस्तु ।। सर्वे -- तथास्तु ।। आरति मे ।।

जग जलधीत्यादि ।। इति श्री श्री भूपतीन्द्र मल्ल विरचिते माधवानल नाटके तृतीयोऽङ्क: सम्पूर्ण: ।। संवत् ८२४ पौष वदि २ ।। शुभम् ।।

समीक्षा -------- प्रस्तुत माधवानल नाटक में प्रकरण के सामान्य लक्षणों का निर्वाह पाया जाता है । धनंजयने[१] प्रकरण के विषय में कहा है कि इसका इतिवृत्त कल्पित या ख्यात तथा लोकसंश्रय - अर्थात् मध्यम वर्ग के सामान्य व्यक्ति की कथा से संबंधित होता है । मंत्री, ब्राह्मण या वैश्य इन में से कोई भी इसका नायक हो सकता है और वह धीरप्रशान्त कोटिका ही होता है । वह धर्मकामार्थ में प्रवृत्त दिखायी पड़ता है । नायक की कार्य-सिद्धि के मार्ग में अनेक आपदाएं आती हैं जिनका सामना करते हुए वह अभीष्ट की प्राप्ति करता है । नायिका कुलजा या गणिका होती है, किसी किसी प्रकरण में दोनों ही नायिका होती हैं । अत: नायिका के आधार पर इसके तीन भेद हो जाते हैं -- कुलजा---निष्ठ, गणिकानिष्ठ और उभयानिष्ठ । आचार्य विश्वनाथने[२] प्रकरण में अंगीरस के रूप में शृंगार को स्थान देकर प्रत्यक्षत: इसमें इसी रस की प्रधानता स्वीकार की है । राघवनने[३] प्रकरण पर विशेषरूप से विचार करते

---

१. अथ प्रकरणे वृत्तमुत्पाद्यं लोकसंश्रयम् ।
आमात्य विप्रवणिजामेकं कुर्याच्च नायकम् ।
धीरप्रशान्तं सापायं धर्मकामार्थ तत्परम् ।
नायिका तु द्विधा नेतु: कुल स्त्री गणिका तथा ।
क्वचिदेकैव कुलजा वेश्या क्वापि द्वयं क्वचित् ।
आभि: प्रकरणं त्रेधा ---------- ।
(दशरूपक, ३।३६-४२)

२. साहित्य दर्पण ६।२२४-२५

३. डा.ओझा कृत नाट्य समीक्षा, पृ.१८ से उद्धृत ।

हुए इसमें त्रासद तत्वों की खोज की है । उनका मत है कि भारतीय मत की सीमा के अन्तर्गत प्रकरण में त्रासद तत्व पर्याप्त मात्रा में विद्यमान हैं और कैशिकी वृत्ति का अभाव इसका प्रमाण है । विभिन्न प्रकरणों के सम्यक् पर्यवेक्षण से इन्होंने यह निष्कर्ष निकाला है कि इसमें त्रासद तत्व और धार्मिकता का संमिश्रण रहता है । ये दोनों न्यूनाधिक मात्रा में प्रत्येक प्रकरण में अनिवार्य रूप से विद्यमान रहते हैं ।

आलोच्य रचना का इतिवृत्त लोक संश्रय एवं उत्पादय, दोनोंका मिश्रण है । नायक ब्राह्मण, मध्यम वर्ग का और धीर-प्रशान्त है, साथ ही धर्मकामार्थ तत्पर भी है । कामकन्दला की प्राप्ति नायका का अभीष्ट है, जिसकी प्राप्ति के मार्ग में अनेक बाधाएं समुपस्थित होती हैं, किन्तु धीरता से उसका सामना करते हुए वह उसे प्राप्त कर लेता है । नायिका गणिका है । इन दोनों के प्रेम प्रदर्शन से शृंगार रस की प्रधानता है । नायक-नायिका के मिलन के मार्ग में अनेक आपदाएं आने से त्रासद तत्व का भी अनायास ही समावेश हो गया है । इन तथ्यों के पर्यवेक्षण से स्पष्ट हो जाता है कि प्रकरण के सामान्य लक्षण इसमें घटित होते हैं । कथासार से यह तथ्य और अधिक प्रकाश में आ जायेगा ।

<u>कथा-सार</u> ------- पुष्पावती नगरी के राजा गोविन्दचंद्र के दरबार में माधवानल नाम का सुन्दर, शास्त्र-संगीतज्ञ और स्वाभिमानी ब्राह्मण एक सम्मानित पद पर आसीन है । एक दिन जब वह भावाभिभूत होकर पुष्करणी के तटवर्ती उद्यान में प्राकृतिक सौंदर्य एवं पराग-भार से लदे हुए शीतल-मन्द समीर की मादकता का

आनन्द ले रहा था, उसी समय जल-क्रीड़ा जन्य कलान्ति का परिहार करने के लिये तीन नव यौवनाएं उस वाटिका में आती हैं। अकस्मात् उनकी दृष्टि उस सौंदर्य-मूर्ति नवयुवक पर अटक जाती है। तीर निशाने पर लगता है। विह्वलता से वे परस्पर कहती हैं कि कामसंभव रूप को इस उद्यान में देखकर हमारा धैर्य विचलित हो गया है। प्रथम दर्शन में ही काम-शर-दग्धा होकर आकर्षण की विवशता से उस युवक की ओर उनके पांव आप ही आप उठ पड़ते हैं। वे सुध-बुध भूलकर प्रेमालाप करने में मग्न हैं। अकस्मात् अपने अभिभावकों के कर्कश स्वर से चौंककर वे अलग खड़ी हो जाती हैं। ये अभिभावकगण राजदरबार में उस युवक पर उन तरूणियों को बहकाने का दोषारोपण कर उचित न्याय की मांग करते हैं।

दूसरे दिन राज दरबार में उसे अपने गुणों को प्रकाशित करने का आदेश दिया जाता है। इस आदेश में उसे रहस्य का आभास मिल जाता है। अत: वह तन्मय होकर अपनी कुशलता प्रदर्शित करने लगता है। सम्पूर्ण सभा उसके वीणावादन और गायन से मंत्र मुग्ध हो जाती है। इस दृश्य के अवलोकन से राजा के हृदय में न्याय-प्रियता और कला-गुण ग्राहिता का अन्तर्द्वन्द्व आरंभ हो जाता है। राजा का हृदय कहता है कि सभा के साथ ही स्त्रियां भी इसके वादन से मोहित हैं। यह अपने रूप-गुण के कारण त्यागने-योग्य नहीं है, किन्तु उनका मस्तिष्क प्रतिरोध करते हुए कहता है कि यदि इसका परित्याग नहीं किया गया तो प्रजा में असंतोष फैल जायेगा। अत: 'त्रिपर्णी वीटिका' देकर

इसका निष्कासन ही समुचित है । अंत में बुद्धितत्व की विजय के कारण माधवानल को देशत्याग का आदेश मिलता है । ग्लानि और चिन्ता के भार से दबे हुए उसका मस्तिष्क सोचता है -----

माता यदि विषं दद्यात् पिता विक्रियते सुतं ,
राजा हरति सर्वस्वं शरणं कस्य जायते ।[१]

इसी द्वविधा में वह कामसेन के राजदरबार में आजाता है । द्वार-रक्षक के प्रतिरोध करने पर वह अन्यमनस्कता से बैठा हुआ है कि उसके कानों में नूपुर की मधुर झंकार तथा सुमधुर कंठ की आकर्षक ध्वनि गूंजने लगती है, जिससे उसका ध्यान भंग हो जाता है । सतर्कता से सुनने पर उसे तबला के बोल अशुद्ध प्रतीत होते हैं ⊗ । अत: वह द्वार-रक्षक अपने राजा के प्रति उक्त अपमान जनक शब्द सुनकर राजा को यह समाचार देता है । सभा में उपस्थित होने की आज्ञा देकर उसे इसका कारण पूछा जाता है । वह कहता है कि पूर्वाभिमुख होकर मृदंग बजानेवाले को वामांगुष्ठ नहीं है, जिसके कारण ताल त्रुटित होने से नृत्य अशुद्ध हो रहा है । अत: सभा में उपस्थित जन मूर्ख हैं ।[२] इस कला मर्मज्ञता से प्रसन्न होकर राजा उसे अलंकरणादि पारितोषिक से सम्मानित करते हैं ।

रति-सम सुन्दरी और संगीत, नृत्य-कला में निपुण कामकन्दला इसी दरबार में राजनर्तकी है । वह प्रथम दर्शन में ही

---

१. प्रस्तुत नाटक, पृ.२०

२. पूर्व्वाभिमुख भए जे मृदंग बजबे अछ तकर वामांगुष्ठ नहि ।
ताल त्रुटित भेल, ते नृत्य अशुद्ध । सभाक लोको मूर्ख । (पृ.२३)

⊗ अत: वह द्वार रक्षक से कहता है कि राज-सभा के मध्य होने वाले नृत्य में ताल त्रुटि होने के कारण नृत्य अशुद्ध हो रहा है, जिसे कोई भी मूर्ख समझ नहीं पाता।

मदन-तुल्य माधवानल पर हृदय से आकर्षित हो जाती है । पश्चात् जब उसे माधवानल की संगीत-मर्मज्ञता का ज्ञान होता है तो उसके हृदय में उसे सम्पूर्णत: प्राप्त करने की उत्कट लालसा जागृत हो जाती है । उस सभा में वह अपने को प्रेम की विवशता से निरूपाय पा रही है । मस्तिष्क हृदय का साथ देता है और तत्क्षण उसमें स्फुरणा होती है कि अपने गुणों को प्रकट करना ही प्रसंगो प्रयुक्त होगा । अत: वह सिर पर जलपूरित कुंभ और मथानी रखकर दोनों हाथों से गुटिका चलन करती हुई ताल सहित नृत्य प्रस्तुत करती है[१] जिसे माधवानल अत्यधिक प्रभावित होकर राजा से प्राप्त अलंकरणादि उसे अर्पित कर देता है । इस दृश्य को देखकर जब राजा उसकी ओर विस्मय और प्रश्न-सूचक दृष्टि से देखते हैं तो वह सरलता और निर्भीकता से कहता है --------

> किं गीतं कण्ठहीनस्य किं कुलं शीलवर्जितम् ।
> किं ज्ञानं गुणमज्ञात्वा किं धनं दान वर्जितम् ।।[२]

इस उत्तर को अपना अपमान समझकर क्रोधावेश में राजा उन्हें निष्कासन का आदेश देते हैं । कामसेन के दरबार से भी

---

१. ई माधवानल संगीत शास्त्र वेत्ता । हिनक समक्ष जओ गुण प्रकट करिअ तओ सार्थक होयत । - - - - - - - - - हमे अपन गुण प्रकाश कए नृत्य करब । जलपूरित कुंभ मथानि राखि दुहु हाथे गुटिका चलन कए सतालपूर्व्वक चलन चालन कए नृत्य करब । (पृ. २४)

२. पृ. २५

अपमान और निष्कासन प्राप्त होने के कारण वह लक्ष्य हीन होकर अनिश्चित् दिशा में निकल पड़ता है । शरीर से तो वह अग्रसर हो रहा है किन्तु उसका मन और हृदय इतस्तत: करता हुआ कामकन्दला की ओर पलायन कर रहा है । अंत में वह सोचता है कि कामकन्दला के निवास स्थान के समीप केवल एक मार्ग है, जहां पर प्रतीक्षा करने से उससे अंतिम भेंट हो सकती है । कामकन्दला भी अपने चित चोर के निष्कासन से विवश होकर मूक करूण क्रन्दन और उदास मन से डग भरती हुई नियत पथ से आगे आ रही है । आशातीत रूप में अपने प्रियतम को अपने लिए प्रतीक्षा करते देखकर उसकी हृदय-कलिका खिल उठती है, और प्रेम-विभोर होकर वह अनुनय-विनय से उसे अपनी कुटी में ले जाती है । भोजनोपरान्त दोनों में प्रेम संभाषण के साथ रति-क्रीड़ा भी होती है ।

तीसरे दिन माधवानल अपनी प्रियतमा से कहता है कि निष्कासित होने पर भी तुम्हारे प्रेम-पाश में उलझकर इसी राज्य में रहना उचित नहीं है, अत: मुझे अब अन्य नगरि के लिये भाग्य के बल पर प्रस्थान करना चाहिये । कामकन्दला आर्द्र पलकों से रोकती हुई कातरवाणी से निवेदन करती है, जिसका असर स्वाभिमानी माधवानल के हृदय पर कुछ भी नहीं पड़ता और वह बिलखती हुई कामकन्दला को छोड़कर चला जाता है । पुष्करणी में स्नान करने के पश्चात् जब वह एक आम्र-वृक्ष की शीतल छाया में विश्राम कर रहा है कि उसकी दृष्टि मैथुन-रत हंस-हंसी पर पड़ती है

जिससे पूर्व स्मृति के कारण उसके हृदय में एक टीस उत्पन्न होती है,[१] किन्तु वह निरसहाय और निरूपाय है । इसी वृक्ष की छाया में बैठे हुए अन्य व्यक्तियों की पारस्परिक बातचीत से इसे विदित होता है कि मणिकचन्द्र नाम का एक व्यापारी उज्जैन से कामावती नगरी में व्यापार के लिये जा रहा है । वह उस व्यापारी से कामकन्दला तक पत्र पहुंचा देने की प्रार्थना करता है । व्यापारी की स्वीकृति मिलने पर वह पत्र में लिखता है कि मैं कुशलता से उज्जैन में निवास कर रहा हूं । तुम इस पत्रवाहक के द्वारा अपने समाचार के साथ अपनी प्रतिमा भी शीघ्र ही भेज देना, जिससे मेरे हृदय को कुछ शांति मिलेगी ।[२]

इधर कामकन्दला भी अपने प्रियतम के वियोग में दशमावस्था को प्राप्त कर रही है । इसी समय व्यापारी से पत्र प्राप्त होने पर उसका हृदय कुछ क्षण के लिये आश्वस्त हो जाता है और वह अपनी प्रतिमा के साथ एक पत्र भी उस व्यापारी को देती है, जिसमें वह केवल एक वाक्य लिखती है कि "हमर जीवन मेल नलनिक नीरे, न रह पथिक थीरे ।" पत्र प्राप्त कर माधवानल उसी व्यापारी के साथ उज्जैन के लिये प्रस्थान करता है ।

---

१. कामकन्दला सुन्दरि तो हैं मोर जीवन समाने ।। ध्रु. ।।
पुनिम शशिक तुल करवने देखब मुख, तुअ गुण विसरि न जाए ।
लोल विलोचन खंजन जुग जनि के मोहि देत मिलाए ।
हे हंस, तोहर गमन देखि कामकन्दला स्मरण होइ अछ । अत्यन्त सुन्दरी कामकन्दला कखने मिलब । हा हन्त ! (पृ. ३१-३२)

२. हमे कुशल पूर्वक उज्जयनी नगर बसल छिए । तोहें अपन प्रतिमा लिखि त्वरा हमरा के पठाय देल चाहिए । तें हमर चित्त अत्यन्त सुख होयत । (पृ. ३६)

महाकाल के दर्शन-पूजन के पश्चात् वह सोचता है कि इस देवस्थान में मैं अपने दुख की दो गाथा लिखकर रखूंगा, जो ज्ञाता होगा वह अवश्य ही मेरे दुख को दूर करेगा । तदनुसार ही वह महाकाल के मंदिर में दो गाथा लिखता है -------

विरला जानन्ति गुणा: विरला पालन्ति निर्धन-नेहम् ।
विरला परकार्य्यकरा: पर दुखिता विरला: ।।

किं करोमि क्वगच्छामि रामोनास्ति मही तले ।
कान्ता विरेह यं दुखं जानत्येको राघव: ।।[१]

महाकाल के दर्शन के लिये आये हुए महाराज विक्रमादित्य की दृष्टि उस गाथा पर पड़ती है और वे वहीं पर बैठे हुए उस विरही से उसके दुख का कारण पूछते हैं, किन्तु कुछ भी उत्तर नहीं मिलने पर वे शपथ लेते हैं कि उस विरही के दुख-दूर किये बिना वे अन्नजल ग्रहण नहीं करेंगे । राज्य में घोषणा हो जाती है कि विरही के पूर्ण परिचय देनेवाले व्यक्ति को मनोवांछित पुरस्कार दिया जायेगा । एक दिन जब माधवानल अपनी व्यथा महाकाल से निवेदन कर रहा था तो उस समय उसी मंदिर के कोने में छिपकर बैठी हुई भोग विलासिनी नाम की वेश्या उसका परिचय जान कर महाराज से निवेदन करती है । दूसरे दिन उसे आदर के साथ दरबार में उपस्थित किया जाता है । महाराज उसे प्रणाम कर उसके विरह का कारण पूछते हैं । वह कहता है कि कामावती नगरी में कामकन्दला नाम की एक अत्यन्त सुन्दरी

---

१. हमे कुशल पूर्वक उज्जयनी नगर बसल छिय । तोहें अपन प्रतिमा लिखि त्वरा हमरा के पढाय देल चाहिय । तें हमर चित्त अत्यन्त सुख होयत । (पृ.४०)

तरूणी है, जिसके विरहानल से दग्ध होकर मेरे शरीर की यह स्थिति हो गयी है । महाराज उसे अनेक सुन्दरियों का प्रलोभन देकर वेश्या के प्रेम से विरत होने को कहते हैं किन्तु उसे कामकन्दला के अतिरिक्त उर्वशी भी नहीं चाहिये । अंत में महाराज उसकी प्रार्थना स्वीकार कर लेते हैं ।

विक्रमादित्य छद्म वेष में कामकन्दला के प्रेम की परीक्षा लेने के लिये आते हैं, किन्तु विरह-विक्षिप्ता की अन्यमनस्कता से रूष्ट होकर वे उसकी छाती पर लात मारते हैं । कामकन्दला उनके पैरों को पकड़कर प्रणाम करती है । विक्रमादित्य विस्मय में जब उसका कारण पूछते हैं तो वह बताती है कि उसके हृदय में विप्र माधवानल का वास है जिसे उनके पैर छू गये हैं, अत: वे भी प्रणाम्य हैं । महाराज बहुत ही प्रभावित होते हैं किन्तु अंतिम परीक्षा लेते हुए कहते हैं कि मेरी नगरी में माधवानल नाम का एक विप्र अपनी प्रियतमा के वियोग से मर गया है । इस शोक समाचार से वह गिर पड़ती है और उसका प्राणान्त हो जाता है । वे दुखित मन अपनी राजधानी वापस आकर यह समाचार माधवानल को देते हैं, जिसे सुनते ही उसका भी प्राणान्त हो जाता है । इन दो हत्याओं के कारण महाराज ग्लानि से मर जाते हैं और प्रायश्चित्त के लिये अपने हाथों ही अपना मस्तक काटने को उद्यत हो जाते हैं । तत्क्षण ही अग्नि-वैताल प्रत्यक्ष होकर उन्हें वैसा करने से रोकते हुए कहता है कि आत्मघात की आवश्यकता नहीं, पाताल से अमृत लाकर उन्हें जीवित किया जा सकता है । अमृत-सिंचन से वे दोनों अपने अपने स्थान पर पुनर्जीवित हो उठते हैं ।

इस घटना के पश्चात् महाराज विक्रमादित्य ससैन्य कामसेन के राज्य की ओर प्रस्थान करते हैं । राजनीति के अनुसार पहले एकदूत भेजा जाता है किन्तु अभिमानी कामसेन युद्ध के लिये आह्वान करता है । घमासान युद्ध में उसके सभी सैनिक काम आजाते हैं । अंत में वह विक्रमादित्य की शरण में आकर क्षमा याचना करते हुए सहर्ष कामकन्दला को सौंप देता है । महाराज उसे लेकर अपनी राजधानी वापस आ जाते हैं । इस प्रकार माधवानल-कामकन्दला का संयोग हुआ और वे दोनों आनन्द से विक्रमादित्य के राज्य में रहने लगे ।

आलम कृत माधवानल कामकन्दला से तुलना --------

भूपतीन्द्र मल्ल कृत माधवानल नाटक की कथा आलमकृत माधवानल कामकन्दला से, जिसका रचना-काल सं. १६४० या हिज्री सन् ९९१ है, एक आध स्थल को छोड़कर, ज्यों की त्यों मिलती है । अत: तुलनात्मक अध्ययन के लिये उसका भी कथा-सार संक्षेप में प्रस्तुत किया जा रहा है, जो डा. हरिकान्त श्रीवास्तव [१] के अनुसार इस प्रकार है -------

एक समय पुष्पावती नगरी के राजा गोपीचन्द्र के राज्य में माधव नामक एक सुन्दर, सर्व शास्त्र वेत्ता और ललित कला पारंगत ब्राह्मण रहता था । उसकी मोहनी सूरत पर नगर की सारी स्त्रियां न्योछावर थीं । एक दिन वह नदी तट से स्नान करने के बाद गीत

---

१. भारतीय - प्रेमाख्यान काव्य, पृ. ४६५-७९

गीत गाता हुआ घर लौट रहा था । नगर में प्रवेश करते ही उसके गीत की धुन एक स्त्री के कानों में पड़ी, जो अपने पति को भोजन परोस रही थी । उसके गीतने उस स्त्री को इतना सम्मोहित कर लिया कि उसके हाथ से भोजन-सामग्री छूटकर पृथ्वी पर गिर पड़ी । इस व्यवहार से असंतुष्ट होकर उसके पतिने इस घटना का कारण जानना चाहा । स्त्रीने क्षमा मांगते हुए बताया कि माधव के राग से मैं इतनी विस्मित हो गयी कि मुझे तन बदन की सुध न रही ।

इस उत्तर से क्रोधान्ध होकर उस व्यक्ति ने नगर के अन्य लोगों के साथ राजदरबार में विनती की कि माधव को निष्कासित किया जाये, अन्यथा नगर निवासी ही अन्य स्थानों पर चले जायेंगे । प्रजा के आरोप को सुनकर राजाने माधवानल को बुलाने को भेजा । अपनी वीणा को लिये हुए जब माधवानल दरबार में पहुंचा तब राजाने अपनी बीस चेरियों को कुसुंभी साड़ी पहनकर कमल-पत्र पर बैठने को कहा । वीणा की झंकार और उससे निःसृत मधुर ध्वनि ने कामिनी के कलित कलेवर में एक उन्माद उत्पन्न कर दिया और मदन की पीड़ा से वे अपनी सुध बुध भूल गयीं । शरीर को सम्हाल न सकीं और स्खलित हो गयीं । राजा स्वयं भी बहुत प्रभावित हुआ । उन चेरियों को जब भीतर जाने का आदेश हुआ तो वे अपने पृष्ठ भाग पर कमल-पत्र लिपटाए हुए ही गयी । इससे राजा को विश्वास हो गया और माधवानल को निष्कासनकी आज्ञा दे दी ।

माधवानल घूमता-फिरता हुआ कामावती नगरी पहुंचा । इसी राजदरबार में कामकन्दला नाम की अपूर्व सुन्दरी नर्तकी थी ।

दरबार में चल रहे संगीत समारोह में भीड़ के साथ वह भी जाने लगा किन्तु द्वारपालने उसे रोक लिया । वह संगीत सुनने लगा और कुछ त्रुटियां देखकर उसने सारी सभा को मूर्ख कहना प्रारंभ कर दिया । द्वारपाल ने राजा से कहा तो उसे अन्दर आने का आदेश मिला । राजा के पूछने पर माधवने बताया कि बीस मृदंग का जो अखाड़ा चल रहा है, उसमें ग्यारहवें आदमी के केवल चार उंगली हैं, अत: स्वर भंग हो रहा है जिसे मूर्ख सभा नहीं जान पाती । बात सच निकली, अत: प्रसन्न होकर राजाने दो कोटि का उपहार देकर उसे अपने पास सिंहासन पर बैठाया ।

कामकन्दला उस गुणज्ञ को देखकर बड़ी प्रसन्न हुई, इसलिये उसने बड़ी तन्मयता से नृत्य आरंभ किया । सर पर पानी का कटोरा रखकर हाथों से चक्र बनाती हुई जिस समय वह पग संचालन कर रही थी, उसी समय कंचुकी की सुगंधि से आकर्षित होकर एक भ्रमर उसके कुच के अग्र भाग पर आ बैठा । भ्रमर के दंशन से उसे पीड़ा होने लगी किन्तु नृत्य की मुद्रा के खंडित होने के भय से तथा माधव के समक्ष मूर्ख बनने की चिन्ता से, उसने अपनी मुद्रा में किंचित अन्तर न आने दिया, वरन् सांस को खींच लिया जिसमें अधरों की सुगंधि न आने पाए, और फिर कुच के स्त्रोत से तेज वायु का संचालन किया जिसके कारण भ्रमर उड़ गया । कामकन्दला की इस कला को केवल माधव ही देख और समझ सका, अत: उसने प्रसन्न होकर उपहार में प्राप्त वस्तु उसे दे दी और सभा को मूर्ख बताया । इसके इस अशिष्ट व्यवहार से रूष्ट होकर कामसेनने भी अपने राज्य से उसे निष्कासित कर दिया ।

अस्तु, जिस समय माधवानल कामावती नगरी को छोड़कर जाने लगा, उस समय मार्ग में आकर कामकन्दला अपना प्रेम प्रकट करती हुई घर चलने के लिये अनुरोध करने लगती है । उसके वेश्या होने पर प्रथम तो माधव झिझकता है किन्तु जब वह अपने सतीत्व का आश्वासन देती है तब माधव भी जाना स्वीकार कर लेता है । अत: घर पहुंचकर कामकन्दलाने उसकी बड़ी सेवा की । उस विप्र को वशीभूत करने के लिये सखियोंने कामकन्दला को रति की सारी रीति बताकर, सुन्दर वस्त्रों और आभूषणों से सुसज्जित कर कुसुम शय्या पर माधवानल के साथ भेज दिया । इस कामकन्दला के साथ काम-क्रीड़ा में दो रात व्यतीत कर, तीसरे दिन वह नगर छोड़कर चलने को तत्पर हुआ । कामकन्दला उसे जाने नहीं देती थी, वह उसके हाथ पकड़कर आर्द्र पलकों से विनती करने लगी । अंत में एक सखीने माधव की बांह छुड़ा दी । वह विदेश चल पड़ा । एक दिन मार्ग में विरह से व्याकुल होकर उसने आत्मघात करने का विचार किया किन्तु उज्जैन नगरी के कृपालु राजा विक्रमादित्य के स्मरण होने से वह आशान्वित हो उठा ।

उज्जैन पहुंचकर उसने देखा कि दरबार में प्रवेश पाना कठिन है, अत: उसने एक दिन महादेव-मण्डप की दीवाल पर एक गाथा लिख दी ------

कहां करौं कित जाऊं हौं राजा रामु न आहि ।
सिय वियोग संताप बस, राघौ जानत ताहि ।

दूसरे दिन पुन: उसने दूसरी गाथा लिखी -----

रामचन्द्र नहि जग मंह आहि । सिया वियोग कियो दुख जाहि ।।
राजा नल पृथ्वीं सौं गयउ । जिहि विछोह दमयन्ती भयऊ ।।

राजा विक्रमादित्यने दोनों दिन उस गाथा को पढ़ा और वे बहुत दुखी हुए । उन्होंने अपने राज्य में घोष्णा की कि जब तक वह विरही मेरे सामने उपस्थित नहीं किया जाता तब तक मैं अन्न जल ग्रहण नहीं करूंगा ।

ज्ञानवती नाम की एक दासीने महादेव के मण्डप में आधी रात को मलिन और दुर्बल माधवानल को कामकन्दला का नाम रटते सुना, जिसकी सूचना उसने राजदरबार में दे दी । माधवानल राजदरबार में लाया गया । उसकी सारी कहानी सुनने के बाद राजाने अनेक सुन्दरियों का प्रलोभन देकर वेश्या के प्रेम को छोड़ने का आग्रह किया, किन्तु उसने उत्तर दिया कि "मांगो यही बात सुन लीजे, मो कंह कामकन्दला दीजे ।" अंत में राजा ससैन्य कामावती नगरी के लिये प्रस्थान करते हैं । एक दिन वे अपने शिविर से छिपकर कामकन्दला के घर उसके प्रेम की परीक्षा लेने के लिये आते हैं । अपने प्रियतम के विरह के कारण विक्षिप्तावस्था में पड़ी, उसकी अन्यमनस्कता से रूष्ट होकर उन्होंने उसकी छाती पर लात मारी । कामकन्दलाने उनके पांव पकड़ लिये । राजा के कारण पूछने पर उसने बताया कि मेरे हृदय में विप्र माधवा का निवास है, जिन से आपके चरण छू गये हैं, अत: वह मेरे लिये पूज्य हैं । इस उत्तर से राजा द्रवित तो हुए किन्तु अंतिम परीक्षा लेने के रूप में उन्होंने कहा कि माधवानल नाम का एक विप्र, कुछ दिन हुए, अपनी प्रेयसी के वियोग से उनकी नगरी में ही मर गया है । इस समाचार को सुनते ही वह अचेत होकर गिर पड़ी और उसका प्राणान्त हो गया । राजा बहुत दुखी हुए और अपने शिविर में आकर उन्होंने यह समाचार माधवानल को सुनाया जिससे उसका भी देहान्त हो गया ।

इन दोनों की मृत्यु का कारण अपने को समझ कर तथा अपने पापों का प्रायश्चित् करने के लिये उन्होंने चिता में भस्म होने का विचार किया । वे प्रज्वलित चिता में बैठने ही वाले थे कि अग्नि बैतालने उन्हें ऐसा करने से रोक लिया और कारण जानने के बाद पाताल से अमृत ले आकर उन दोनों को पुनर्जीवित किया ।

इसके पश्चात् राजाने एक दूत को कामसेन के पास भेजकर कामकन्दला की मांग की, किन्तु अभिमानी कामसेनने बिना युद्ध के देने से अस्वीकार कर दिया । घमासान युद्ध में उसके सारे सैनिक काम आ गये । अंत में उसने विक्रमादित्य से क्षमा याचना की और कामकन्दला को सौंप दिया । इस प्रकार माधवानल-कामकन्दला का संयोग हुआ और वे दोनों आनन्द से विक्रमादित्य के राज्य में रहने लगे ।

<u>अंतर</u> ----- उपर्युक्त दोनों रचनाओं के कथा-सारों से जो अंतर दिखायी पड़ते हैं, वे इस प्रकार हैं -----

१. नाटक में माधव उद्यान में घूम-फिर रहा है और उसी के सरोवर में स्नान करती हुई प्रौढ़ाएं उसे देखकर मोहित हो जाती हैं और प्रेमालाप करने लगती हैं । किन्तु काव्य में स्नानोत्तर मार्ग में गीत गाता हुआ वह जा रहा है, उसके गीत को सुनकर अपने पति को भोजन परोसती हुई स्त्री सुध बुध भूल जाती है, फलत: उसके हाथ से सारी सामग्री छूटकर पृथ्वी पर गिर पड़ती हैं ।

२. नाटक में माधव के संगीत को सुनकर सारी सभा एवं स्त्रियां सम्मोहित हो जाती हैं, इससे अधिक कुछ चर्चा नहीं है । परन्तु काव्य

में बीस चेरियों को कुसुंभी साड़ी में कमल-पत्र पर बैठाया जाता है तथा ये संगीत की मधुर ध्वनि से शरीर को नहीं सम्हाल सकने के कारण स्खलित हो जाती हैं ।

३. नाटक में माधव जब कामसेन के दरबार में पहुंचता है, उस समय चल रहे संगीत समारोह में बैठे हुए मृदंग बजानेवालों की संख्या निर्धारित नहीं है, परन्तु काव्य में बीस व्यक्तियों का उल्लेख है ।

४. नाटक में केवल जलपूरित कुंभ के साथ कामकन्दला के नृत्य का वर्णन है, जब कि काव्य में नृत्य करते समय उसके स्तनाग्र पर एक भ्रमर के बैठ जाने एवं नृत्य कुशलता से पुन: उसके उड़ जाने के प्रसंग का बड़ी सूक्ष्मता के साथ वर्णन किया गया है ।

५. नाटक में कामसेन के राज्य से निष्कासित होने पर माधवानल स्वयं कामकन्दला की प्रतीक्षा कर रहा है ; आग्रह पर उसके घर जाता है और तीसरे दिन चला भी जाता है, सखियों का उल्लेख नहीं है : जब कि काव्य में कामकन्दला अपने सतीत्व और प्रेम की दुहाई देकर उसे अपने घर ले जाती है, सखियां उसे रति-रीति सिखाकर उसके पास भेजती हैं और तीसरे दिन जब वह माधव को रोकती है तो सखियां ही माधव की बांह छुड़ा देती हैं ।

६. नाटक में, माधव जब मार्ग में मैथुन-रत हंस-हंसी को देखता है तो उसे अपनी प्रेयसी का स्मरण हो आता है । वहीं पर उसे एक व्यापारी भी मिलता है जिसके साथ वह कामकन्दला को पत्र भेजकर उससे उत्तर और प्रतिमा भी मंगा लेता है तथा उसी व्यापारी के साथ वह उज्जैन के लिये प्रस्थान करता है । इन प्रसंगों का कुछ भी उल्लेख काव्य में नहीं किया गया है ।

७. नाटक में, माधव की सूचना देनेवाली भोग विलासिनी नाम की एक वेश्या है किन्तु काव्य में राजा की ज्ञानवती नाम की दासी इसकी सूचना देती है ।

८. नाटक में दोनों की मृत्यु से दुखी होकर राजा खड्ग से अपना मस्तक काटने को उद्यत हो जाते हैं, जब कि काव्य में चिता में जलने का वर्णन है ।

उपर्युक्त विभिन्न अन्तरों से प्रकट है कि नाटककारने रंगमंच और अभिनय की सुविधा के लिये, नाटक के सीमित क्षेत्र में, कथा के उस अंश को छोड़ दिया है जिस में नाटकीयता नहीं है और उसके स्थान पर स्वाभाविकता तथा नाटकीयता की वृद्धि के लिये कुछ नये प्रसंगों की उद्भावना की है जो उनकी निजी मौलिकता के परिचायक हैं ।

पूर्ववर्ती पृष्ठों के अन्तर्गत नेपाल के मैथिली नाटकों की विशेषताओं, कथा संगठन तथा प्राप्त समस्त अप्रकाशित नाटकों से संबंधित विवेचन एवं उनके कथासार का जो विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है, उस से प्रकट है कि ये नाटक हिन्दी-नाट्य-साहित्य के अनेक महत्वपूर्ण तथ्यों को प्रकाशित करते हैं, इसके साथ ही डा. ओझाजी की अपेक्षा की भी पुष्टि हो जाती है । मध्यकाल में नेपाल में लिखे गये नाटकों के विवेचन के पश्चात् अब, इसी काल में मिथिलांचल में लिखे गये कीर्तनियां नाटकों का परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है ।